महाकवि अश्वघोष

(जीवन, व्यक्तित्व और कृतित्व)
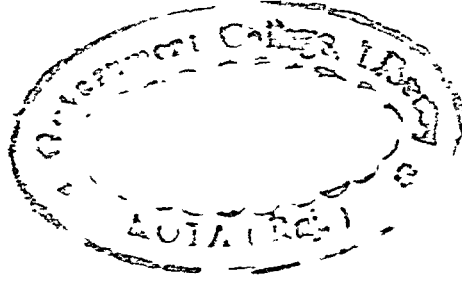
लेखक

डा० हरिदत्त शास्त्री

व्याकरण और वेदान्ताचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०, एकादशतीर्थ

[अध्यक्ष, संस्कृत विभाग-डी० ए० वी० कालेज, कानपुर]

प्रकाशक

साहित्य निकेतन, कानपुर

१९६३

प्रथम संस्करण]

[मूल्य ४·७५

प्रकाशक
साहित्य निकेतन,
श्रद्धानन्द पार्क, कानपुर

प्रथम संस्करण १९६३
मूल्य चार रुपये पचहत्तर नये पैसे

मुद्रक
अमर मुद्रण कार्यालय
रामकृष्ण नगर, कानपुर

विषयानुक्रमणिका

(विवेचना—उत्तर भाग)

भूमिका

नमोस्तु तस्मै सुगताय येन, हितैषिणा नः करुणात्मकेन ।
बहूनि दुःखान्यपवर्तितानि, सुखानि भूयोंम्युप सदृतानि ।।
(सौ० १७/६३)

(ससार मे दुख विनाशक व सुख प्रदाता या दुःखो को झेलने वाले और सुखो को तिलाञ्जलि देने वाले बुद्ध को नमस्कार है ।)

अश्वघोष के पुस्तकाकार होने की भी एक कहानी है । आगरा विश्वविद्यालय में एम. ए. के छात्रो के लिए महाकवि अश्वघोष और नाटककार भास इन दो में से एक का विशेष अध्ययन कुछ वर्षो से अनिवार्य कर दिया गया है । सस्कृत कवियों एव नाटककारो के विषय मे हिन्दी माध्यम से परिचयात्मक एवं समीक्षात्मक ग्रन्थो का सर्वथा अभाव ही है । महाकवि कालिदास के अतिरिक्त अन्य कवियो के विषय मे हिन्दी एवं संस्कृत दोनो ही मे इस प्रकार की बहुत कम सामग्री उपलब्ध है । अश्वघोष की तो सम्पूर्ण कृतिया ही दुष्प्राप्य हैं । अतएव छात्रो एवं अध्यापकों दोनो ही के लिए अश्वघोष का अध्ययन अध्यापन एक समस्या बन गई थी । तथापि मैंने अपने छात्रो को अश्वघोष का अध्ययन करने की प्रेरणा दी । अध्यापन कार्य के लिए मुझे भी समुचित सामग्री जुटाने में कठिनाई पड़ी । अँग्रेजी मे भी बी. सी. लाहा कृत अश्वघोष के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें न उपलब्ध हो सकी । अस्तु मूल ग्रन्थो के आधार पर अध्यापन कार्य प्रारम्भ हुआ । मेरे विद्यार्थी प्रिय सेवाराम गुप्त ने कक्षा मे दिये गये वक्तव्यो को लिपिबद्ध करके सकंलित किया । प्रिय कृष्ण कुमार तिवारी और प्रिय कृष्ण गोपाल अस्थाना ने पाण्डुलिपि की तैयारी मे सक्रिय सहयोग दिया । इसी बीच अलीगढ़ विश्वविद्यालय के रीडर मित्रवर श्री रामसुरेश त्रिपाठी डी. लिट् के निर्देशन मे समाप्त हो चुकने वाले श्री विश्वम्भर नाथ त्रिपाठी के अश्वघोष सम्बन्धी शोध प्रबन्ध की प्रति भी मुझे देखने को मिली । उससे भी इस पुस्तक की तैयारी मे यत्र तत्र सहायता ली गई । इस प्रकार पुस्तक का पूर्वार्ध तैयार हो गया । इसमे विद्यार्थियो के लिए काम चलाऊ सामग्री तो तैयार होगई परन्तु इससे मुझे सन्तुष्टि न हुई । अश्वघोष के सारे काव्य का मैंने फिर से अवगाहन किया । मुझे अश्वघोष काव्य, काव्य की अपेक्षा 'अध्यात्म शास्त्र' या 'वैराग्य शास्त्र' या 'निर्वेद काव्य' ही जँचा । जैसा कि महा कवि ने स्वयं भी लिखा है कि—

"इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थ गर्भाकृतिः,
श्रोतृणां गृहणार्थमन्यमनसा काव्योपचारात्कृता ।
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया तत्काव्य धर्मात्कृतम्,
पातुं तिक्तमिवौषधं मधु युतं हृद्यं कथ स्वादिति ।।"
सौ० १८/६३

अतः मैने अन्य अंशों की अपेक्षा इस अंश को अधिक महत्व दिया। उत्तरार्ध की तैयारी में मुझे अपनी अन्तेवासिनी प्रिय मालती (माला) अवस्थी से निर्दिष्ट उद्धरणो की प्रतिलिपिया तैयार करने मे विशेष सहायता मिली।

लेखक छात्रो को इस रूप मे स्मरण करता हूँ कि:—

प्रियः "सेवारामो" विरहित विरामो विहितवान्,
यथमन्निर्देश विषयघटनां चारुरचनाम् ।
तथा गोपालान्त्यः वचनकर मुख्यो वटुवरः,
स कृष्णो निस्तृष्णः प्रतिलिपिनिदेश विहितवान् ।।

भावुकता या मनुष्यता

चाहे किसी भी देश का व्यक्ति हो साहित्य के अध्ययन करते समय या काव्यानन्द मे मग्न होते समय वह सुध बुध भूल जाता है अर्थात् रसाभिव्यक्ति मे सराबोर हो जाता है। 'हृदय की परख' पढ़ते हुए तन्मयता मे लवलीन हो जाता है कोई कुछ कहे तो चौंक पड़ता है—यही है भावुकता, भावनामयता या रसज्ञता। पशु अपने दुःख मे तो आंसू बहा सकता है 'परसंवेदन' की शक्ति से शून्य होने के कारण भावुकता के आनन्द से प्रभु ने उसे वञ्चित कर दिया या यों कहिये कि यही उसके लिए नियामत है। एक व्यक्ति पर मेरे १००) रु० चाहिए, मैं उससे जब माँगने पहुँचा तो मालूम पडा कि उसके एम मात्र पुत्र का अभी महाप्रयाण होगया है, यदि उस समय भी उससे रुपये देने का आग्रह करूँ तो आप मुझे मनुष्य कहेंगे या पशु! इसी लिए महात्मा भर्तृहरि ने ठीक ही कहा है कि;—

साहित्य सगीत कला विहीन.,
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानः,
तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।।

स्वर्गीय पं० शालग्राम जी शास्त्री इसकी व्याख्या करते हुए ठीक ही कहते हैं कि:—

एक आदमी मनों गणित चाट कर "गोबर गणेश" बन गया—पर मनुष्योचित व्यवहार से एक दम शून्य रहा। अपने सुख दुःख के सिवा दूसरो के दुःख दर्द का उस पर कोई असर नही। रूखेपन की मूर्ति और उजड्डता का अवतार हैं। भावना और भावुकता से बिल्कुल कोरा है, तो आप उसे नर कहेंगे या नर पशु?

पशु तो बेचारा मनुष्यो को कुछ हानि नही पहुँचाता। तिनके खाकर जीता है और मरकर मनुष्यों के पैर की जूती तक बनता है। पर यह नरपशु नरपशु तो

लिए धैर्य, सरलता, अप्रमाद, एकान्त, अल्पेच्छता, सन्तोष, अनासक्ति, सांसारिक प्रवृत्ति मे अरुचि और क्षमा की आवश्यकता होती है। (१६/३८)

सक्षेप मे दुःख से मुक्ति प्राप्त करने के लिए सदाचार और आत्यन्तिक मानसिक शुद्धि आवश्यक साधन है। इसे ही योगाभ्यास भी कहते है। शील, इन्द्रिय, सयम, परिमित भोजन, अल्प-निद्रा, एकान्त सेवन, अकुशल विचारो का परित्याग, मानसिक एकाग्रता आदि के लिए जो अनेक उपाय बतलाये गये हैं वे मुक्ति चाहने वाले योगाभ्यासियों के लिए तो आवश्यक हैं ही और साथ ही आधुनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे काम करने वाले व्यक्तियों के लिए भी लाभ–दायक है। सीलदेव सर्ग के अन्तिम छः श्लोकों में उद्योग के सम्बन्ध मे जो प्रेरक और सुन्दर व्याख्यान दिया गया है उससे ससार का कोई भी व्यक्ति लाभ उठा सकता है।

नन्दन ने बुद्ध के उपदेश को सुनकर तदनुसार आचरण किया। क्लेशो को जीता। ध्यान किया और अर्हत्व (=जीवन्मुक्ति) पाया। वे उत्सुकता स्नेह आशा भय शोक मद और राग से रहित हो गये। उनके लिए न कुछ प्रिय रहा और न अप्रिय, न अनुकूल, न प्रतिकूल। उन्होने अत्यन्त आनन्द और परम शान्ति अनुभव की।

शुद्ध मुद्रण

इस पुस्तक मे दो दो बार प्रूफ देखने पर भी अशुद्धियाँ शेष रह गई हैं। जिसका कारण है कम्पोजिटरो (Compositors) की सम्कृत अनभिज्ञता। स्वतन्त्र भारत मे अभी से भोजराज्य के स्वप्न देखना शेखचिल्ली की कल्पना है। इसका परिणाम यह हुआ कि—'कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात्' यह हैडिङ्ग ही अशुद्ध छप गया। पृष्ठ १३९ पर 'दाम्पत्य' का 'दाम्पपत्य' छपा है। पृष्ठ १४० पर ९ वी पक्ति मे 'छोड़ दिया है' की जगह 'थोड़ा दिया है' छपा है। सूक्तिरत्न की जगह 'सूक्तिरान' 'पुण्णात्यनीहया' की जगह 'पुण्णात्यमनीहया' 'पद्याम्' की जगह 'पधाम्' शिखरिणीं की जगह शिखरणी छपा है। इन अशुद्धियो को देखकर एक पुरानी बात याद आ गई। स्वर्गीय पूज्यवर प० पद्मसिह जी शर्मा की बाते बड़ी उपदेशप्रद होती थी, गुरुवर प० काशीनाथ जी शास्त्री षड् दर्शनारण्यानी पञ्चास्य के विषय मे तो यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि :—

"याहि स्वैर कथा स्तेषामुपदेशा भवन्तिताः।"

अर्थात् बड़े एव योग्य व्यक्तियो की मामूली बातचीत भी शिक्षा देने वाली हुआ करती है। हाँ तो 'प्रबन्ध मञ्जरी' छप रही थी, दो मास मे छप जाने की बात थी किन्तु ५ महीने बीत गये थे, मैंने पूज्य सम्पादक जी (प० पद्म सिंह शर्मा) को कलकत्ते के पते से पत्र लिखकर पूछा कि क्या कारण है कि इतनी देर हो रही है

श्रद्धेय सम्पादक जी ने उत्तर दिया कि "तुम्हे क्या मालूम कि प्रूफ पढते२ उम्र १० साल घट गई, संस्कृत का प्रूफ पढ कर देता हूं, पर अशुद्धियां फिर भी वैसे ही नजर पड़ जाती है जैसे सफेद चादर पर खटमल। प्रूफ पढ़ते पढ़ते मेरी आंखो का तेल और पीठ का कचूमर निकल गया, हां यह हो सकता है कि मां के पेट से बच्चा सही सलामत बाहर निकल आए पर प्रेस के पेट से पुस्तक का सही निकलना कही कठिन है'। यह बात यहां मौके मुहाल के बिलकुल मुताबिक व मौजूं साबित हो रही है। श्री भाई श्यामनारायण जी कपूर मालिक साहित्य निकेतन ने पुस्तक के प्रकाशन में बड़ी दिलचस्पी ली। जिससे मुझे इस नई बात का पता लगा कि वे एक कुशल दुकनदार ही नही बल्कि एक सहृदय कवि हृदय भी है। मेरी अनुपस्थिति में वे काम आगे बढ़ाते रहे, नही तो न मालूम कितनी अशुद्धियां रह जाती। इस पुस्तक का आदि का पांचवां पृष्ठ तो बहुत ही अशुद्ध छपा है उसकी आठवीं पंक्ति का पद्य निम्नलिखित प्रकार पढ़ना चाहिए:—

व्यवसाय द्वितीयोऽथ शाद्वलास्तीर्ण भूतलम्।
सोऽश्वत्थ मूलं प्रययौ बोधाय कृत निश्चयः॥

अन्य स्थानो मे ऐसी भूल नही हुई हैं। मात्रा बिन्दु, और विसर्ग की गलतियां पाठक स्वयं ही सुधार लेंगे। पृष्ठ आठ पर पहले पद्य का पता सौ० २/६२ समझिए। दूसरे पद्य का सौ० २/३५ है तथा 'पालन्नाच्च' एवं 'अमीमयत्' इस प्रकार पवर्ग प्रथमाक्षर घटित पाठ ठीक हैं अन्तस्था प्रथमाक्षर घटित नही। २/३६ मे भी 'अमीमयत्' की ही आवृत्ति है चारों जगह जगह 'यज्ञभूमि का नापना' निरुद्विग्न बनाना, (निर्माण करना) सोम को पात्र में नापना, व मारना अर्थ है। सौ० २/३६वां पद्य इस प्रकार है:

गुरुभिर्विधिवत्काले सौम्यः सोमममीमयत्।
तपसा तेजसाचैव द्विषत् सैन्य ममीमयत्॥२।३६

पुस्तक के अन्त मे स्फुट पद्यो अर्थात् फुटकर पद्यों का भी संकलन किया है जिसका उद्देश्य केवल तत्तद् विषय से परिचय कराना है। उन सकलित पद्यों में सबके अर्थ नही लिखे हैं कुछ को सरल समझकर छोड़ दिया तथा किन्ही का अर्थ करने से ग्रन्थ वैपुल्य का भय लगता रहा। आशा पाठकवृन्द इन पद्यो का अर्थ विचार से स्वयं लगाने की कृपा करेंगे। इस प्रकार यह अश्वघोष के काव्यों का औपरिष्टिक विवेचन छात्रो का उपकारक होगा यह विश्वास है। हो सकता है इस विचार सरणि से किसी को वैमत्य हो, किन्तु यह भी विचार की अन्यतम सरणि है इसमें तो किसी को विप्रतिपत्ति न होगी। मानव सुलभ त्रुटियों के लिए पाठको से यही कहता हुआ विराम लेता हूं कि :—

दुर्मोपोदोपसंघः क्षणमपि न दृढामानुपीशेमुपीयम्,
गम्भीराम्बोधितुल्यं दुरविगमतमं काव्यतत्त्वं विशेषात् ।
श्रद्धावद्धाञ्जलिस्तद्गुणगणनिकपान् प्रार्थये प्रार्थनीयान्,
जोपं जोपं विदोषं कलयितुमखिलं जोपमेवानतोऽहम् ।

किञ्च—यद्यस्तिवस्तुकिमपीह यथानवद्यम्,
द्योतेततत् स्वयमुदेश्यतिचानुरागः ।
मोचेत् कृतं कृतकवाग्भिरलं प्रपञ्चैः,
निदेहि वेनू महिमा नहि किंकिणीभिः ॥ इति ॥

अध्यक्ष संस्कृत विभाग
डी० ए० वी० कालेज
कानपुर
मकर संक्रान्ति सं० २०१९
१४-१-६३

विद्वदाश्रवः—
हरिदत्त शास्त्री

अश्वघोष

विषय-प्रवेश

भारत में भगवान् सुगत के हृदयावर्जक, जनकल्याणकारी, हृत्तंत्री को उपदेशामृत-मधुर निर्झरी से, झङ्कृत करने वाले उपदेश सुदूर काल से जन साधारण को विदित ही हैं। भगवान् बुद्ध ने शव दर्शन से मृत्यु भय, वृद्धावस्था से जरा एवं व्याधि के प्रति जो जिज्ञासा प्रकट की थी वह आज भी जनवाणी का विषय बनी हुई है। केवल भारत में ही नहीं; अशोक के द्वारा उन उपादेय वचनों को विश्वधर्म का रूप देकर एशिया एवं लङ्का आदि में विस्तृत किया गया। सम्राट् अशोक का हृदय युद्धआहत सेना की दर्दनाक चीत्कारों को सहन नहीं कर सका था, अतएव उसने सुगत के दयाभाव से ओतप्रोत बौद्ध सिद्धान्तों की रक्षा के लिए बौद्ध भिक्षुओं की तीन परिषदें आमंत्रित की थीं। जो कि इतिहास में "तृतीय संगीति" के नाम से आज भी ख्याति प्राप्त है। यह तो सर्व विदित ही है कि भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद प्रथम संगीति राजगृह में बुलायी गयी थी तथा निर्वाण के ठीक सौ वर्ष बाद द्वितीय संगीति (सभा) वैशाली में आमंत्रित की गई थी।

सर्वप्रथम इन संगीतियों का प्रमुख उद्देश्य क्या था? इस विषय पर एक सजीव-जिज्ञासा उत्पन्न होती है। भगवान बुद्ध को जब वट वृक्ष के नीचे ज्ञान हो गया तो उन्होंने देश विदेश का भ्रमण करके लोगों को मोक्ष का उपदेश दिया। ठीक इसी प्रकार भगवान बुद्ध के वचनों तथा उनके जीवनगत उपदेशात्मक वाक्यों का संकलन भी पिटकों (बौद्धग्रन्थों) में किया गया है। यही त्रिपटक बौद्ध-साहित्य के मूल ग्रन्थ हैं जिनके नाम क्रमशः विनय-पिटक, सुत्त पिटक, तथा अभिधम्म पिटक हैं।

यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है कि किसी भी धर्म प्रचार के लिए राज्याश्रय की अपेक्षा होती है। तभी वह तेजी से बढ़ सकता है अन्यथा नहीं। ईसाई धर्म इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। ऐसे ही बौद्ध-धर्म की उन्नति का कारण था राज्याश्रय प्राप्ति एवं द्वितीय था दोनों के प्रति की गई करुणा एवं भ्रातृभाव।

केवल अशोक ने ही बौद्ध धर्म को बल एवं पौरुष नहीं दिया; अपितु उसके बाद वह धर्म कुशाण वंश के प्रसिद्ध राजा कनिष्क के राज्यकाल में भी

पाला पोसा गया। जहां अशोक ने भारत के दक्षिणी देश लङ्का, ब्रह्मदेश, चम्पा, श्याम, जावा; सुमात्रा आदि में बौद्ध धर्म की कीर्ति फहरायी वहां कनिष्क भी पीछे नहीं रहा अपितु उसने भी मध्य एशिया, चीन, तुर्किस्तान तथा कोरिया आदि सुदूर देशों तक बौद्ध धर्म का एकाधिपत्य स्वीकार कराने में कुछ भी उठा नहीं रक्खा। उसने स्वयं ही दार्शनिकों, बौद्ध कवियों एवं पण्डितों के आश्रय से बौद्ध धर्म की भक्ति को बलवती बनाया।

इस प्रचार का जनता पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। और इसीलिए भगवान् सुगत को पुराणों के २४ अवतारों की तालिका में स्थान दिया गया। जिस प्रकार विष्णु आदि की उपासना में भक्ति का प्राधान्य था उसी प्रकार भगवान बुद्ध की भक्तिमय अर्चना में भी उसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं, जो कि बौद्ध भिक्षुओं के पवित्रत्यागपूर्ण और निश्चलचरित्र, बौद्धधर्म का भ्रातृभाव, विश्व प्रेम एवं करुणा के सिद्धान्तो से प्रस्फुटित हुई। महाराज कनिष्क के समय इस प्रवृति के बीज फूटते दृष्टिगोचर होते हैं और इस प्रवृत्ति के अंकुरों मे दार्शनिक एवं कवि अश्वघोष का एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। अतः इस उपेक्षित बौद्ध कवि के विषय में चर्चा करना ही हमारा प्रमुख ध्येय है।

अश्वघोष की जन्म तिथि

संस्कृत साहित्य में काव्य लेखकों की जन्मतिथि निर्णय करना एक संदिग्ध विषय रहा है, इसका कारण स्पष्ट ही है। मुख्यतया या तो उन काव्यकारों ने स्वयं अपने विषय में कुछ लिखने का साहस आत्म प्रकाशन की प्रवृति के भय से नहीं किया अथवा उस विषय सामग्री को सदैव के लिए अन्धकार के गर्त में डाल दिया गया। जो भी हो जैसा कि पाश्चात्य विद्वानों का कथन है कि :—"There is one weak point in Indian Litirature." उसी के अनुसार सर्वप्रथम काव्यजगत् में आने वाले बौद्ध कवि अश्वघोष की तिथि के विषय में प्राप्त स्रोतों की कमी अवश्य है और इसीलिए भिन्न-भिन्न विद्वान् उन्हें भिन्न-भिन्न तिथि से संबंधित करते हैं। यह तो निश्चित ही है कि अश्वघोष के काल निर्णय में अधिक मतभेद नही है क्योंकि बौद्ध ग्रन्थों ने अश्वघोष के विषय में आवश्यक जानकारी को सुरक्षित रक्खा है यहां पर हम अश्वघोष के काल निर्णय पर एक विहंगम दृष्टिपात करेंगे।

भारतीय महापुरुषों की तिथि-निर्णय में दुरुहता का एक कारण यह भी है कि भारतीय ऐतिहासिक परम्परा अव्यवस्थित सी है। द्वितीय

कारण जिसका उल्लेख उपर्युक्त पंक्तियों में किया जा चुका है उन महापुरुषों का अपने विषय में मौन रहना मात्र है। अश्वघोष भी इस भारतीय सामान्य प्रवृत्ति के अपवाद नहीं हैं उनके काव्य 'सौन्दरनन्द' तथा 'शारिपुत्र-प्रकरण' की समाप्ति पर यह उल्लेख मिलता है कि वे साकेत के निवासी तथा सुवर्णाची के पुत्र थे। उन्होंने सौन्दरनन्द के अन्त में लिखा है :—

"सुवर्णाचीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवेर्महावादिनः कृतिरियम्।"

इसके अतिरिक्त चीनी और तिब्बतीय इतिहासकारों पर हमें समय परिज्ञान के लिए निर्भर रहना पड़ता है क्योंकि अश्वघोष ने उपर्युक्त वाक्यों के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा। चीनी परंपरा अश्वघोष को पुण्यादित्य अथवा पुण्यश्री की उपाधि से विभूषित करती है। तिब्बतीय इतिहासकार श्री तारानाथ ने अश्वघोष के मातृचेट, पितृचेट, शूर, मतिचित्र आदि विविध नामों का उल्लेख करके हमें अश्वघोष के विषय में मतिभ्रम में डाल दिया है। यों तो अश्वघोष के विषय में प्रचलित किम्बवदन्तियों की कमी नहीं है तो भी मुख्य मुख्य विद्वानों के द्वारा अश्वघोष को जिन तिथियों में रखा गया है उनका संक्षेपतः उल्लेख मात्र करना अनावश्यक न होगा।

(१) अश्वघोष की कृतियों में 'सौन्दरनन्द' एवं 'बुद्धचरित्र' के अतिरिक्त शारिपुत्र प्रकरण है जिसका कि पूर्णनाम 'शारद्वतीपुत्रप्रकरण' है वह उस की तृतीय कृति है। इस नाटक के अवशेष मात्र ही अब उपलब्ध होते हैं। इस नाटकावशेष की पाण्डुलिपि लुडर्स महोदय के अनुसार कनिष्क के राज्यकाल में निर्मित तथा कुषाणकाल में संशोधित मानी जाती है। जान्स्टन महोदय ने बुद्धचरित्र की भूमिका में इसी मत का प्रतिपादन किया है। इस कथन से यह सिद्ध होता है कि बौद्ध कवि अश्वघोष राजा कनिष्क के समकालीन रहे होंगे।

(२) सिलवां लेवी महोदय ने जरनल एशियाटिक (Journal Asiatique) के पृष्ठ ३४५ पर अनेक चीनी सूत्रों की खोज करते हुए अश्वघोष के समय के प्रतिपादन के संबंध में लिखा है कि अश्वघोष निश्चितरूपेण कनिष्क के समकालीन थे। साथ ही यह बात भी सिद्ध की है कि वे नागार्जुन के पूर्ववर्ती थे।

(३) चीनी "संयुक्त रत्न पिटक सूत्र" में बोधिसत्वाश्वघोष, माठर नामक मंत्री एवं चरक नामक वैद्य—इन तीनों व्यक्तियों को चन्दन कनिष्क का समकालीन बताया गया है। यही नहीं अन्य परम्पराओं से यह पता

चलता है कि अश्वघोष उत्तरापथ में स्थित तुखारा के राजा चन्दन कनिष्क से संबंधित थे। इस मत के विरोधियों में फ़ाहियान एवं तारानाथ प्रमुख हैं। उनका मत इससे भिन्न है।

(४) टामस महोदय ने 'कनिष्क' लेख की भूमिका में स्पष्ट रूप से कनिष्क को कुषाण से अभिन्न माना है। हो सकता है कि इसी राजा की साकेत विजय की घटना से साकेत निवासी अश्वघोष एवं साकेत विजयी कनिष्क दोनों एक साथ हो गये हैं। कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे यह पता चलता है कि कनिष्क ने साकेत विजय में ही अश्वघोष को अपने साथ ले लिया था। अतः यह बात भी अश्वघोष को राजा कनिष्क का समकालीन होना सिद्ध करती है।

(५) अश्वघोष को इत्सिंग ने महान् आचार्य माना है। तारानाथ ने तो महा, शूर एवं लघु इन तीन नामों वाले तीन अश्वघोषों को गिनाया है। नागार्जुन ने जो कि स्वयं अश्वघोष के शिष्य थे „श्रद्धोत्पादशास्त्र„ के भाष्य में छः अश्वघोषों की चर्चा की थी। चीनी तथा तिब्बतीय परंपरा में दो भिन्न भिन्न अश्वघोषों का परिगणन किया गया है। इस परिस्थिति में असली अश्वघोष जो कि सौन्दरनन्द, वुद्धचरित, एवं शारिपुत्र प्रकरण के रचयिता कौन थे, इस बात का निर्णय करना कठिन कार्य है। यहां पर एक परम्परा और प्रचलित थी। सर्वास्तिवादी मतानुसार बोधिसत्व अश्वघोष बुद्ध के निर्वाण के ३०० वर्ष वाद उत्पन्न हुए थे तथा महाप्रज्ञापारमिता की व्याख्या में अश्वघोष को निर्वाण के ३७५ वर्ष वाद माना गया है। अतः इन उपर्युक्त परम्पराओं के विखरे जाल में से असली अश्वघोष कवि के कालनिर्णय की समस्या और अधिक जटिल हो गई क्योंकि सर्वप्रथम पूर्णरूपेण यह निर्णय करना पड़ा कि वस्तुतः बुद्धचरित, सौन्दरनन्द एवं शारिपुत्र प्रकरण का रचयिता अश्वघोष कौन था ?

इस क्षेत्र में डा०विमला चरण लाहा ने सराहनीय कार्य किया। उन्होंने तीन अश्वघोषों को पाठकों के सम्मुख रखा। एक अश्वघोष स्थाविर अथवा भिक्षु, हीनमतानुयायी थे। द्वितीय अश्वघोष महासूत्रालंकारशास्त्र के लेखक थे, जिनकी स्थिति निर्वाण के ३०० या ३७५ वर्ष वाद मानी जाती थी। तृतीय अश्वघोष महायान श्रद्धोत्पाद शास्त्र के लेखक महायानी थे। जिनकी स्थिति बुद्ध निर्वाण के ६०० वर्ष बाद मानी जाती थी।

डा० लाहा ने इन तीनों में से प्रथम को बुद्धचरित सौन्दरनन्द एवं शारिपुत्र प्रकरण का रचयिता अश्वघोष माना है तथा अश्वघोष एवं

मातृचेट दोनों का टामस एवं तारानाथ महोदय के अनुसार कनिष्क के राज्यकाल में होना सिद्ध होता है।

यहां इस बात को समझना भी आवश्यक सा प्रतीत होता है कि अश्वघोष एवं मातृचेट समकालीन कैसे थे? इस प्रश्न का समाधान करते हुए डा० जान्स्टन ने बुद्धचरित की भूमिका में इन दोनों की एक अन्य समानता की ओर संकेत किया है। बुद्धचरित के बारहवें सर्ग के ११५वें श्लोक की निम्न पंक्ति:—

'व्यवसायद्वितीयेन गुप्तपदमनन्तरम्।
सो ऽश्वत्थमूलं प्रययौ"

तथा मातृचेट कृत नाम संगीति की व्याख्या में उपलब्ध निम्नपंक्ति:—

'व्यवसायद्वितीयेन प्राप्तं पदमनुत्तरम्'

प्राय: साम्य रखती है। यद्यपि मातृचेट एवं अश्वघोष के पौर्वापर्य में भी पर्याप्त मतभेद है क्योंकि टॉमस महोदय अश्वघोष को मातृचेट से पूर्ववर्ती तथा तारानाथ व विन्टरनित्स अश्वघोष को मातृचेट के पश्चाद्वर्ती मानते हैं तथापि दोनों कनिष्क के समकालीन थे। इस विषय में सभी विद्वान् एकमत हैं।

अब इस बात का पता चलाना है कि कनिष्क का समय क्या था? फ्रैंक, फ्लीट, वोयर प्रभृति विद्वानों के मतों का विवेचन करते हुए ओल्डन वर्ग महोदय ने "The date of Kaniska" में कनिष्क का समय ईसा की प्रथम शताब्दी स्वीकार किया है। अत: उपरोक्त आधारों से अश्वघोष का समय कनिष्क के समकालीन होने के कारण ईसा की प्रथम शताब्दी स्वीकृत होता है। जान्सटन महोदय अश्वघोष को ५वीं शती, एवं प्रथम शताब्दी ई० पू० के बीच का मानते हैं। सैमुअल बील अश्वघोष का समय ७०वीं ई०, चीन के कतिपय यात्री ७० ई० तथा डा० जान्स्टन ५० वर्ष ई० पू० से १०० वर्ष ई० पूर्व तक मानते हैं।

इसके अतिरिक्त हम देख चुके हैं कि अश्वघोष नागार्जुन के पूर्व विद्यमान था। नागार्जुन का उल्लेख हमें जगय्यापेटास्तूप के लेख से मिलता है जो उसके प्रशिष्य के द्वारा उत्कीर्ण कराया गया था। इस स्तूप के लेख की तिथि ईसा की तीसरी शती मानी जाती है। अत: यह निश्चित है कि अश्वघोष नागार्जुन के गुरु होने के कारण अवश्य ही कनिष्क के राज्यकाल ईसा की प्रथम शताब्दी में रहे होंगे।

अश्वघोष के इस काल निर्णय में अन्य अन्तरंग तथा बहिरंग प्रमाण भी दिये जा सकते हैं:—

(१) ईसा की ५वीं शती में बुद्धचरित का चीनी अनुवाद हो चुका था, अतः इससे पूर्व अश्वघोष का काव्य पूर्णरूपेण लब्ध प्रतिष्ठ हो चुका था। इसलिए अश्वघोष अवश्य ही ईसा की प्रथम शती में हुए होंगे।

(२) बुद्धचरित महाकाव्य का अन्तिम सर्ग अशोक की संगीति का वर्णन करता है। फलतः अश्वघोष अशोक के पश्चाद्भावी थे। अशोक का समय (२६५–२११ ई० पू०) माना जाता है।

(३) अश्वघोष तथा कालिदास की शैलियों की तुलना करने से पता चलता है कि अश्वघोष की कला कालिदास की कला के लिए पृष्ठ-भूमि है। यह तो एक विवादास्पद विषय है कि कुछ विद्वान् कालिदास को अश्वघोष का पूर्ववर्ती मानते हैं और कुछ पश्चाद्वर्ती। वस्तुतः यदि देखा जाय तो स्पष्ट पता चलता है कि अश्वघोष के काव्यों में वह विकास नहीं है जो कि कालिदास के काव्यों में प्राप्त है। इसीलिए यह निर्विवाद कथन है कि अश्वघोष कालिदास के पूर्ववर्ती हैं।

कुछ भी हो यत्किञ्चित् मत वैपरीत्य के अनन्तर भी अधिकांश विद्वान् अश्वघोष की तिथि ईसा की प्रथम शताब्दी ही स्वीकार करते हैं और यह मत न्याय संगत भी प्रतीत होता है।

परिचय, जीवन एवं व्यक्तित्व

कवि या कलाकार अपनी कला की यवनिका के पीछे छिप छिप कर अपने व्यक्तित्व का निदर्शन कराता रहता है। इस प्रकार के व्यक्तित्व की झलक पाठकों की प्रौढ़ता एवं दूरदर्शिता पर निर्भर करती है, क्योंकि उस कलाकार या कवि की कृतियों में यत्र तत्र उपलब्ध वाक्यांश ही उसके जीवन एवं लक्ष्य की ओर अस्पष्ट इंगित मात्र करते हैं। यदि उसकी कृति विषय प्रधान हुई तो पाठक को उसके व्यक्तित्व को समझने में बौद्धिक व्यायाम नहीं करना पड़ता, अन्यथा विषय प्रधान कृतियों में उसकाव्यक्तित्व, उसकी अभिरुचि आदि का पता चलाने के लिए पूर्णरूपेण अध्ययन अपेक्षित है।

अश्वघोष के प्रमुख दो काव्यों 'सौन्दरनन्द' एवं 'बुद्ध चरित' के अध्ययन करने से पता चलता है कि वह सुवर्णाक्षी का पुत्र एवं साकेत का निवासी था। हम तिथि निर्देश करते हुए यह कह चुके हैं कि उसके दोनों काव्यों के अन्त में यह स्पष्ट लिखा है कि—

"आर्य सुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्य भदन्ताश्वघोषस्य महाकवे र्महावादिनः कृतिरियम्।"

उपर्युक्त वाक्य से हमें यह भी पता चलता है कि अश्वघोष आर्य संस्कृति का प्रतिपादक, भिक्षु, आचार्य, भदन्त, महाकवि एवं महावादी (शास्त्रज्ञ) भी था। यह गुण स्वयं उसकी लेखनी से प्रसूत हुए हैं। अतः यह सिद्ध ही है कि अश्वघोष उस समय का एक महाकवि होने के साथ साथ प्रकाण्ड पण्डित एवं बौद्ध धर्म का उपदेशक भी रहा है।

अश्वघोष ने अपनी माता को आदर देने के लिए ही उपरिलिखित वाक्य में केवल अपने को माता के नाम से ही संबंधित किया है, उन्होंने कहीं पर भी अपने पिता के नाम का निर्देश नहीं किया। परन्तु डा० विमला चरण लाहा ने इससे गोत्र नाम का अर्थ लिया है, और साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि उस समय ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में ही केवल मातृ सत्तात्मक निर्देशात्मक प्रथा प्रचलित थी।

अश्वघोष साकेत के निवासी थे। इसकी पुष्टि टॉमस द्वारा सम्पादित 'महाराजा कनिष्क' नामक लेख से होती है। साकेत की स्थिति के विषय में अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। कौशल एक विस्तृत जनपद था जिसमें

अयोध्या एवं साकेत अभिन्न स्थान थे। हेमचन्द्र ने भी 'शब्द कल्पद्रुम' में 'साकेत कौसला इति हेमचन्द्रः' लिखकर अयोध्या एवं साकेत को एक ही बतलाया है।

दूसरी बात यह है कि सौन्दरनन्द के द्वितीय सर्ग में कवि ने मध्यदेश का निर्देश किया है:—

तयोः सत्पुत्रयोर्मध्ये शाक्य राजो रराज सः।
मध्यदेश इव व्यक्तो हिमवत्पारि पात्रयोः॥

इसके आधार पर कई विद्वानों में इस धारणा का आविर्भाव होता है कि अश्वघोष मध्यदेश का निवासी था। परन्तु इत्सिङ्ग महोदय ने भारत को ही मध्यदेश का द्वितीय अभिधान बतलाया है। अतः अश्वघोष भारत का ही निवासी था—यह तो निर्विवाद सिद्धान्त है।

एक अन्य सूत्र के अनुसार वह कुसुमपुर निवासी था, क्योंकि तारानाथ ने मातृचेट को कुसुमपुर से सम्बद्ध किया है। पर यह मत ठीक नहीं—ऐसा टॉमस मानते हैं।

प्रचलित किम्बदन्तियों एवं चीनी परंपरा के आधार पर यह कहा जाता है कि अश्वघोष ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। तत्पश्चात् इन्होंने बुद्ध धर्म में दीक्षित होकर देश विदेशों का भ्रमण किया। बुद्ध चरित एवं सौन्दरनन्द मे अनेक स्थल इस बात के प्रमाण स्वरूप उद्धृत किये जा सकते हैं। सौन्दरनन्द के द्वितीय सर्ग के ३५वें श्लोक में लिखा है कि:—

"अश्रान्तः समये यज्वा यज्ञ भूमिममीमयत्।
पालनाच्च द्विजान् ब्रह्म निरुद्विग्नमभीमयत्॥"

उस समय यज्ञभूमि का निर्माण एवं वेदोक्त धर्म का पालन करना ब्राह्मणों का ही परम धर्म था। अतः इससे यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष भी निश्चित रूप से ब्राह्मण थे। चीनी एवं तिब्बती इतिहासकार भी उन्हें प्रथम ब्राह्मण मानते हैं। बुद्ध धर्म स्वीकार करके उन्होंने मध्य एशिया तथा उत्तर भारत की यात्रा की। केवल वह बौद्ध होकर ही संतुष्ट न रहे, बल्कि उस धर्म के उपदेशक एवं प्रचारक के रूप में वह हमारे समक्ष अधिक आते हैं। धर्म के प्रचार के लिए उन्होंने काव्य एवं संगीत का प्रश्रय लिया। साथ ही भ्रमण करते हुए लोगों को शम धर्म का उपदेश दिया। अश्वघोष ने स्वयं सौन्दरनन्द के अन्त में इस बात का उल्लेख करते हुए अपने काव्य के लक्ष्य की ओर इंगित किया है।

"इत्येषा व्युपशान्तये न रतये, मोक्षार्थगर्भा कृतिः"

अतः अश्वघोष के समग्र व्यक्तित्व को हम दो भागो में विभक्त कर

सकते हैं। प्रथम तो बौद्ध धर्म में सम्मिलित होने से पूर्व का व्यक्तित्व तथा द्वितीय बाद का व्यक्तित्व। अश्वघोष पर ब्राह्मण संस्कृति की गहरी छाप पड़ी थी। वे वेदत्रयी, उपनिषद्, महाभारत, रामायण आदि से भलीभाँति परिचित थे। सोमपान, वेद पाठ, याज्ञिक अनुष्ठान, वेदोक्त धर्म आदि क्रिया कलाप का वर्णन सौन्दरनन्द मे है। जहाँ एक ओर अश्वघोष के दार्शनिक व्यक्तित्व का उपनिषदोंने निर्माण किया, वहाँ दूसरी ओर रामायण तथा महाभारत ने कवि रूप को सुसज्जित किया। वस्तुत. रामायण की स्पष्ट छाप उनके काव्यों में अङ्कित है। डा० लाहा के अनुसार:—

"अश्वघोष ने बौद्ध धर्म की व्याख्यायें प्रस्तुत करने मे ब्राह्मण शिक्षा एवं ज्ञान का उन्मुक्त प्रयोग किया है।"

डा० जान्स्टन तो यहाँ तक कहते हैं कि "अश्वघोष ब्राह्मण तथा बौद्ध सिद्धान्तों के विभेद को कम करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।"

इससे यह सिद्ध होता है कि अश्वघोष के व्यक्तित्व के निर्माण में ब्राह्मण धर्म का प्रमुख हाथ था।

बौद्ध धर्म के ग्रहण के पश्चात् अश्वघोष द्वारा बौद्ध साहित्य का अध्ययन स्वाभाविक था। अत: उन्होंने सम्पूर्ण पिटक साहित्य का अवगाहन किया। उनका आदर्श अर्हत्व या जीवन्मुक्ति पाना है। अत: वह बुद्ध वचनों के प्रामाण्य को शिरसा स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वे वेदवाद के अधिक समीप हैं। उनके काव्यों में हीनयान मत का प्रतिपादन है। यद्यपि महायान के मूल सिद्धान्त एवं श्रद्धाभक्ति की स्थापना भी सौन्दरनन्द में मिलती है।

बौद्ध धर्म के समर्थक के रूप में अश्वघोष का व्यक्तित्व भिक्षु, भदन्त, उपदेशक एवं महाकवि के रूप में प्रकट हुआ। आचार्य तथा उपदेशक के रूप में देश विदेश का पर्यटन किया। चीनी यात्री इत्सिंग, जिसने ६७१ ई० से ६९५ ई० तक भारत में भ्रमण किया था, बतलाता है कि अश्वघोष बौद्धधर्म का प्रबल समर्थक था। उस समय के बौद्ध मठों मे उसकी रचनाओं का गान हुआ करता था। नागार्जुन, अश्वघोष एवं 'देव' को एक श्रेणी में रखते हुए उसने यह भी कहा है कि ऐसे पुरुष प्रत्येक पीढ़ी में एक या दो ही हुआ करते हैं। ह्वेन्त्सांग के अनुसार अश्वघोष, देव, नागार्जुन एवं कुमारपाल चार सूर्य हैं जिन्होंने विश्व को प्रकाशित किया था।

अश्वघोष के ग्रंथ बौद्ध धर्म के सुन्दर उपदेशों से भरे पड़े हैं। उनमें

से दो कृतियों—सौन्दरनन्द एवं शारिपुत्र प्रकरण—का विषय क्रमशः नन्द दीक्षा एवं शारिपुत्र दीक्षा ही है। कहा जाता है कि गायक और गायिकाओं की टोली बनाकर, वाजे के साथ जीवन की अनित्यता के मनोहर गीत गा-गाकर वे लोगों को अपने धर्म की ओर आकृष्ट किया करते थे। अश्वघोष बौद्ध मन्दिर मे रहते थे और उनकी वाणी में इतना प्रभाव था कि वे सभा को रुला देते थे। उनकी बुद्धि सर्वतोमुखी थी। वे काम शास्त्र, राजशास्त्र; दण्डनीति, सांख्य, योग, काव्यधर्म, व्याकरण और छन्द शास्त्र मे निपुण थे। सम्भवतः वे अपने आरम्भिक जीवन में निपुण थे। सम्भवत; वह अपने आरंभिक जीवन में कामभोग में आसक्त रहे होंगे और पीछे बौद्ध सन्यासी हो गये। सौन्दरनन्द का यह वाक्य इन्हीं के जीवन की ओर संङ्केत करता है।

"अहोवताश्चर्यमिदं विमुक्तये करोति रागी यदयं कथामिति"। १८।५०

संक्षेपतः डा० भोलाशंकर व्यास ने अश्वघोष के समग्र व्यक्तित्व को चार भागों में विभक्त किया है। धार्मिक उत्साह; पौराणिक ब्राह्मण धर्म के प्रति साहिष्णु प्रवृति, दार्शनिक मान्यता एवं कलात्मक मान्यता। इनका प्रथक-प्रथक संक्षेपतः दिग्दर्शन निम्न पंक्तियों में किया गया है।

(१) धार्मिक उत्साह :—अश्वघोष के अन्तरतल में भगवान सुगत के वचनों में अटूट आस्था थी। उसी भक्ति की अपूर्व तरलता को अश्वघोष ने पाठकों के समीप पहुँचाया। अश्वघोष का धार्मिक उत्साह इस भक्ति के ताने वाने में गुंथकर इतना भावात्मक हो गया है कि इनकी रचना में स्वतः काव्यत्व संक्रान्त हो गया है। पर अश्वघोष का धार्मिक उत्साह अन्धविश्वाश नही है। वे ब्राह्मण धर्म के प्रति पूर्ण आदरभाव रखते जान पड़ते हैं। जबकि दान्ते ने अपने आदरणीय कवि वर्जील को भी इसलिए नरक में चित्रित किया है कि वह भगवान ईसा के चरण चिन्हों पर नहीं चल सका था।

(२) पौराणिक ब्राह्मण धर्म के प्रति सहिष्णु प्रवृत्ति—दास गुप्ता ने "History of Sanskrit Literature" मे स्पष्ट लिखा है कि "अश्वघोष ब्राह्मण धर्म तथा पौराणिक साहित्य के प्रति अधिक उन्मुख थे। सौन्दरनन्द में समय समय पर साङ्केतिक पौराणिक आख्यानों, वृतों तथा घटनाओं एवं बुद्धचरित के द्वादश सर्ग मे निर्दिष्ट सॉख्य दार्शनिक सिद्धान्तों से अश्वघोष का ब्राह्मण धर्म तथा दर्शन का गम्भीर अध्ययन प्रकट होता है। बुद्धचरित के प्रथम सर्ग का अगले पृष्ठ पर उद्धृत श्लोक इसी बात का साक्षी है।

"यत्राज गास्त्रं भृगुरङ्गिरा वा न चक्रतुर्व शकरावुपी तौ।
तयो मुनी सौम्य ससर्जतुस्तत्कालेन शुक्रश्च वृहस्पतिश्च ॥"

इसी प्रकार बुद्धचरित्र के चतुर्थ सर्ग के ७८ एवं ८० श्लोक, सौन्दरनन्द सप्तम सर्ग (२६–४५) में यह दर्शन तथा पौराणिक आख्यान हैं। वैसे अनेक पद्यों में, रामकथा, शिवपार्वती वार्तालाप, स्वर्ग, इन्द्र, अप्सरायें आदि पौराणिक मान्यताएं उपलब्ध होती हैं।

जब छन्दक और कन्थक (घोड़ों का नाम) बुद्ध को वन में छोड़कर लौट आये तो प्रजा ने राम के वन गमन से केवल रथ लौटने की तरह आंसू बहाए। देखिये:—

"मुमोच बाष्पं पथि नागरो जनः,
पुरा रथे दाशरथे रिवागते।" (बु० ८-८)

इसी प्रकार कवि के द्वारा शिव विजय की घटना का संकेत बुद्ध चरित १३।१६ में मिलता है।

शैलेन्द्र पुत्रीं प्रति येन विद्धो,
देवोऽपि शम्भुश्चलितो बभूव ॥

दार्शनिक मान्यता—अश्वघोष स्वयं दार्शनिक थे। उनके दर्शन में सांख्य न्यायादि षड् दर्शनों का साक्षात्कार होता है। बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों का संकेत सौन्दरनन्द के १६ वें सर्ग में प्राप्य है। बुद्धचरित के अन्तर्गत उपन्यस्त दार्शनिक सिद्धान्त विशेष पाण्डित्य पूर्ण परिभाषिक शैली में उपनिबद्ध है। ये सिद्धान्त विद्वानों की वस्तु हैं जबकि सौन्दरनन्द के दार्शनिक स्थल जन सामान्य तथा रसिक सहृदय की भी चीज हो गये हैं। डा० कीथ के कथनानुसार सौन्दरनन्द बुद्ध चरित्र के बाद की रचना है। बुद्ध चरित का कवि परम शान्ति के मन्दिर तक कभी कभी रमणीय और अधिकतर शुष्क प्रदेशों से पाठकों को ले जाता है जबकि सौन्दरनन्द का कवि एक सीधे मार्ग से ले जाता है जिस मार्ग के दोनों ओर चाहे सुरभित पदपावलियां न हों फिर भी मार्ग की सरलता स्वतः पथिक के पैरों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती रहती है।

(४) अश्वघोष की कलात्मक मान्यता:— काव्य के संबंध में अश्वघोष की मान्यता कालिदास, भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष की भांति नहीं है। कालिदास शुद्ध रसवादी कवि हैं। भारवि, माघ एवं श्री हर्ष चमत्कारवादी

या अलंकारवादी हैं। परन्तु अश्वघोष का कलात्मक दृष्टिकोण निश्चत रूप से उपदेशवादी या प्रचारवादी है। वे कव्यानन्द रस को काव्य का साधन मानते हैं। जब कि कलिदास उसे साध्य मानते हैं तभी तो अश्वघोष ने काव्य रचना के लक्ष्य को शान्ति माना। कड़वी औषधि शहद से सम्प्रक्त होकर मधुमय बन जाती है इसी प्रकार मोक्ष के लिए किया जाने वाला कड़ुवा उपदेश भी काव्य के आश्रय से मधुर बन जायगा यही अश्घोष की लगन थी।

"इत्येषा व्युप शान्तये न रतये मोक्षार्थ गर्भा कृतिः।
+ + + +
पातुं तित्तमिवौषधं मधूयुतं हृद्यिं कथं स्यादितिः॥"

डा० विमला चरण लाहा का मत

अश्वघोष के माता पिता के विषय में अनेक मत हैं। कोई उसे लोक एवं घोणा का पुत्र कहते हैं। तारानाथ के मत में वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए संघगुह्य का पुत्र था जिसका विवाह खोरता के व्यापारी की सबसे छोटी कन्या से हुआ था। अश्वघोष ने तिरहुति, कामरूप, गौड़देश और उड़ीसा की यात्रा की जहां अपने प्रतिवादियों को अपनी अद्भुत तर्कपूर्ण युक्तियों से हराया। वह सौन्दरनन्द में प्रभावशाली वक्ता के नाम से तथा साकेत की रहने वाली सुवर्णाक्षी का पुत्र कहा जाता है। इसने महासूत्रालङ्कार शास्त्र का निर्माण किया। कुछ भी हो हमें तीन अश्वघोष नामक व्यक्तियों का पता चलता है। अश्वघोष के विषय में संदेह का कारण यह है कि इतिहास के लेखकों ने अशोक और कालाशोक को एक मान लिया है।

अश्वघोष के सूत्रालङ्कार को चीनी भाषा में कुमारजीव ने प्राप्त किया जिसमे कर्मफल की चर्चा है और बुद्ध के साथ भारत में हुई घटनाओं का वर्णन है। यह महायान सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। स्थविर अश्वघोष और उसका गुरु स्थविर पार्श्व दोनों क्रम से मध्यभारत और उत्तर भारत के निवासी थे। वह हीनयान का अनुयायी था। मिलिन्दपहो (मिलिन्द प्रश्न) में स्थविर अश्वघोष के सिद्धान्तों का वर्णन है। यह ग्रंथ विन्ध्यप्रदेश में बनाया गया। कवि अश्वघोष सांख्य सिद्धान्त का भी अनुयायी था।

भले ही वह बोधिसत्व अश्वघोष था, या स्थविर अश्वघोष था। इस विषय में संदेह नहीं कि वह ब्राह्मण प्रभाव एवं परंपरा से युक्त था।

वृद्ध धर्म की दीक्षा के बाद उसने वुद्धधर्म के ग्रन्थों काअध्ययन किया। वह धर्म गुप्त या सर्वास्तिवाद का अनुयायी था तथा हीनयान का उसने पूर्ण योग्यता के साथ प्रतिपादन किया है। उसके लेखों से विदित होता है कि वह संस्कृत के व्याकरण, अलंकार-शास्त्र, राजधर्म और उपनिपदों का ज्ञाता था। उसने जिस मध्यप्रदेश का वर्णन किया है वह बुद्ध सबंधी साहित्य से भिन्न हैं और वोधायन एवं पतञ्जलि के आर्यावर्त के वर्णन से मिलता जुलता है। उसने रागश्वर नामक एक ग्रंथ वनाया जो हृदय स्पर्शी और मधुरतापूर्ण गानों से पाटलिपुत्र के निवासियों को आत्मा की सत्ता के न होने के प्रति प्रेरित करता था। तथा लङ्का कीं पनिहारियों के गाने से मिलता था। कुछ लोग मातृचेट और अश्वघोप को एक मानते हैं क्योंकि उन दोनों का वर्णन तथागत की ६ विभूतियों के गाने से परिपूर्ण है। नागार्जुन ने एक ऐसा गीत वनाया था जो समस्त भारतवर्ष में गाया जाता था जवकि वौद्ध लोग यात्रा को निकलते थे। नागार्जुन उस कविता में हीनयान पंथीय अश्वघोप का निर्देश कर रहा है, या महायान के दूसरे विद्वान अश्वघोप का—इस विपय में हम किसी निर्णय पर नहीं पहुंचते।

तिव्वत की परम्परा के अनुसार कुछ विद्वान धार्मिक सुभूति तथा अश्वघोप को एक मानते हैं। सुभूति ने 'सद्‌गतिकारिका' नामक ग्रंथ की रचना की। जिसका पाली भापा में 'पञ्चगतिदीपन' नाम है। स्टेनकोनोव (Stenkonow) का कथन है कि अश्वघोप नाटक लिखने में भी दक्ष था। उसके वनाये गए नाटकों के कुछ अंश मिलते हैं। ललित विस्तर में लिखा है कि अश्वघोप में नाटककारों के सभी गुण विद्यमान थे। अश्वघोप प्राकृत का पक्षपाती था, परन्तु उसके नाटकों में संस्कृत पाई जाती है।

वुद्धघोप के विपय में भी ऐसी प्रसिद्धि थी कि वह पालिभापा का विद्वान ब्राह्मण था और वुद्ध गया में उत्पन्न हुआ था। उसने स्थान-स्थान पर विजय यात्राएं की किन्तु अश्वघोप विद्वता में उससे भी अधिक था। अश्वघोप कीं परंपरा में थेर सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसे अश्वगुप्त के नाम से भी पुकारते हैं। महाभारत में वर्णित सती प्रथा की चर्चा अश्वघोप ने अपने काव्यों में की है। अश्वघोप हीनयान का तो अनुयायी ही था किन्तु वह कौकुलिक या वहुश्रुति नामक अवान्तर धर्मों का भी अनुगामी था। उसका सिद्धान्त था कि सारे ही धर्म कुकूल अर्थात् तपस्यां से वनते है। वहुश्रुतिक लोग सर्वास्तिवाद के सिद्धान्त को मानते थे। धर्मगुप्त का मत भी सर्वास्तिवाद का समर्थक रहा है।

अश्वघोष ने राजनीति के लिए 'राज' शब्द का प्रयोग किया है। उसने उदायी को नीतिशास्त्र का प्रामाणिक विद्वान माना है। संक्षेप में अश्वघोष एक सन्यासी, उपदेष्टा भिक्षु भदन्त, आचार्य एवं महाकवि सभी कुछ था जिसके काव्यों में भगवान सुगत की वाणी की मधुर निर्भरी सतत रूप में प्रवाहित होकर पाठकों के हृदयों को शान्ति रस से आप्लावित करती रहेगी।

अश्वघोष की रचनाएँ

अश्वघोष की कृतियों के विषय में भी पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। विविध सूत्रों से संकलित ग्रन्थों की संख्या १६ तक पहुँचती है जो कि अश्वघोष द्वारा रचित बतलाये जाते हैं, परन्तु यह सर्वमान्य तथ्य नहीं है। वस्तुत: इन समस्त ग्रन्थों का कर्तृत्व अश्वघोष को समर्पित करना दुष्कर है। अश्वघोष के नाम से इन सब का संबंध उनका बौद्ध धर्म में पाण्डित्य, उनकी विलक्षण प्रतिभा तथा महा कवित्व शक्ति है जिससे सभी रचनाएँ अश्वघोष के नाम से सम्बद्ध होकर ख्याति पाने लगीं। यदि निरपेक्ष दृष्टि से देखा जाय तो यह सभी विद्वानों का मतैक्य है कि अश्वघोष ने दो महाकाव्य बुद्ध चरित एवं सौन्दरनन्द लिखे। उनके नाटकों में शारिपुत्र प्रकरण ही विशेषत: उल्लेखनीय है। इन सबका विस्तृत विवेचन निम्न पंक्तियों में किया जायगा।

बुद्ध चरित

अश्वघोष मुख्य रूप से अपनी तीन रचनाओं के कारण प्रसिद्ध हैं। बुद्ध चरित २८ सर्गों का महा काव्य है जिसके चीनी और तिब्बती संस्करण २८ सर्गों में उपलब्ध हैं। इसमे भगवान बुद्ध के जीवन, उपदेश तथा सिद्धान्तों का काव्य के बहाने वर्णन हैं। धर्मक्षेम नामक भारतीय विद्वान् (४१४–२१ ई०) के द्वारा किये गये अनुवाद २८ सर्गों में ही उपलब्ध हैं। चीनी यात्री इत्सिङ्ग ने भी काव्य को वृहदाकार बतलाया है। सन् १८८३ ई० में सर्व प्रथम सैमुअल बील ने बुद्धचरित के चीनी संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद किया। कावेल ने इसका संस्कृत संस्करण १८९३ ई० में प्रकाशित कराया। इसके बाद जर्मन और इटली भाषाओं में भी इसके अनुवाद हुए। १९२६ ई० में फ्रेडरिक ने १७ सर्गों में जर्मन अनुवाद प्रस्तुत किया। कावेल के संस्करण के दोषों को दूर करते हुए जान्स्टन ने भूमिका सहित बुद्ध चरित का प्रामाणिक संस्करण निकाला। यह भी १४ सर्गों में ही उपलब्ध है। कहा जाता है कि इन सर्गों के बाद अन्तिम चार सर्ग अमृतानन्द नामक एक नैपाली पंडित द्वारा जोड़ दिये गये हैं। लेखक ने यह स्वीकार किया है कि—

"अमृतानन्देन लिखितम् बुद्धं काव्यं सुदुर्लभम्।
चतुर्दशं, पञ्चदशं, षोडशं, सप्तदशं तथा॥"

डा० हरप्रसाद शास्त्री द्वारा भी १४ सर्गों के मध्य में समाप्त होने वाली एक पाण्डुलिपि प्राप्त होती है। अश्व घोष ने बुद्धचरित की कथा-वस्तु ललित विस्तर से ग्रहण की। सैमुअल वील के अनुसार इस काव्य का आधार महापरिनिर्वाण सूत्र था। बुद्ध के समस्त उपदेशों का इसमे संकलन है। भारतीय विद्वान् अश्वघोष की कृतियों के विषय में मौन हैं। केवल बौद्ध कवि शरणदेव ने बुद्ध चरित के ८।१३ का निम्न श्लोक अपनी दुर्घटवृत्ति में उद्धृत किया है।

"इदं पुर तेन विसर्जितं वनं,
वनं च तत्तेन समन्वित पुरम्।
प्रशोभते तेन हि नो विना पुर,
मरुत्वता वृत्रवधे यथा दिवम्॥"

नि:संदेह संस्कृत बुद्धचरित अधूरा है। कहा जाता है कि तिब्बती अनुवाद इतना अविकल है कि उसके आधार पर संस्कृत में बुद्धचरित की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता हुआ इत्सिंग कहता है कि—

'भारत के समस्त पाँचों प्रान्तों और दक्षिण सागर के देशों (द्वीपों) में सर्वत्र इसका गान होता है। कवि ने कुछ ही शब्दों में अनेक अर्थ और भाव भर दिये हैं जिससे पाठकों का हृदय इतना आनन्दित हो जाता है कि वह इस काव्य को पढ़ने से थकता ही नहीं।"

नि.सन्देह यह एक कलाकार की कृति है। विषय का प्रतिपादन सुन्दर एवं सुव्यवस्थित ढंग से हुआ है। दृश्य वर्णन सजीव एवं प्रभावोत्पादक हैं। कविता अनावश्यक अलंकारों के बोझ से बोझिल नहीं है। चमत्कारपूर्ण या आश्चर्यजनक घटनाओं के वर्णन में कवि नियंत्रित जान पड़ता है।

काव्य के प्रथम पाँच सर्गों में बुद्ध के जन्म से लेकर अभिनिष्क्रमण तक की कथा है। ६।७ में कुमार का तपोवन प्रवेश है, अष्टम में अंत:पुर का विलाप, नवम् में कुमार के अन्वेषण का प्रयास, दशम सर्ग में गौतम का मगध जाना, एकादश में काम निन्दा, द्वादश में महर्षि अराड़ के पास शान्ति प्राप्ति के लिए जाना, त्रयोदश सर्ग में मार-पराजय तथा चतुर्दश के प्राप्त अंश में बुद्धत्व प्राप्ति का सन्देश है। इसके बाद का अंश जो डा० जान्स्टन के आंग्ल अनुवाद से प्राप्त होता है, बुद्ध के शिष्यों, उपदेशों सिद्धांतों तथा निर्वाण का वर्णन और अशोक के काल तक के संघ की स्थिति का चित्रण ही प्राप्त होता है। संक्षेपत: बुद्धचरित काव्य का विषय विवेचन आगे की पंक्तियों में उपलब्ध है।

बुद्धचरित का कथासार

प्रथम सर्ग

इक्ष्वाकु वंश में शुद्धोदन नामक राजा हुआ। उस इन्दुतुल्य राजा के शची सदृश रानी थी जिसका नाम 'महामाया' था। कालान्तर मे रानी के गर्भ से, पुष्य नक्षत्र में सुन्दरवन में लोकहित के लिए पुत्र उत्पन्न हुआ। रानी को न पीड़ा हुई और न रोग। कालक्रम से गर्भ से निकलने पर दीप्ति एवं धीरता में वह भूतल पर अवतीर्ण बालसूर्य के समान शोभित हुआ। सप्तर्षि तारा के समान वह सात पग चला और उस सिंह गति ने चारों ओर देख कर यह भविष्य वाणी की। "जगत के हित के लिए ज्ञानार्जन के लिये मैं जन्मा हूँ, ससार में मेरी यह अन्तिम उत्पत्ति है।" उसके दर्शन करने के लिए आये हुये धर्माभिलाषी दिव्य प्राणियों से वह वन भर गया।

उस समय :—

"कालं प्रणेदुः मृगपक्षिणश्च शान्ताम्बुवाहाः सरितो बभूवुः।
दिशः प्रसेदुर्विमले निरभ्रे विहायसे दुन्दुभयो निनेदुः॥"

आचरण विद्या में प्रसिद्ध ब्राह्मणों ने राजा से कहा "भूतल पर मनुष्य अपनी शान्ति के लिए आपके पुत्र को छोड़कर कोई दूसरा गुण नहीं चाहते। आपका यह प्रदीप अपके वंश का प्रदीप है।"

तथा आपका यह पुत्र :—

"यथा हिरण्यं शुचि धातु मध्ये, मेरुर्गिरीणां सरसां समुद्रः।
तारासु चन्द्रस्तपतां च सूर्यः पुत्रस्तथा ते द्विपदेषुवर्यः॥"

इस प्रकार अपने पुत्र के गुणों को जानकर राजाने प्रसन्न होकर उन श्रेठ द्विजों को धन दिया। तदन्तर तपोवल से जन्मान्तकर का जन्म जानकर महर्षि असित शाक्यधिपति के घर गए। महर्षि असित ने राजा से कहा "तुम्हे जो पुत्र उत्पन्न हुआ है वह बुद्धत्व को प्राप्त करेगा।" और उस बालक को देखकर महर्षि के आंसू आ गए। इस पर राजा के द्वारा पूछे जाने पर महर्षि बोले कि दुःख रूप सागर से, व्याधि ही जिसका फैला हुआ फेन है। वृद्धावस्था ही जिसका प्रचण्ड वेग है—बहते हुए आर्त जगत को यह ज्ञान स्वरूप महानौका के द्वारा उबारेगा। अतः आप इसके लिए शोक न करें। यह सुनकर राजा ने एक लक्ष (लाख) पयस्विनी गायें ब्राह्मणों को दान में दीं। वन से लौटकर राजा और रानी नगर में आए। महल में प्रवेश कर राजा ने प्रसन्न होकर 'यह करो; यह करो' कहते हुए पुत्र की वढ़ती और यश के लिए सब कुछ किया।

द्वितीय सर्ग–अंतःपुर-विहार

भगवान सुगत के जन्म के पश्चात् राजा शुद्धोदन के राज्य में किसी प्रकार की कमी न रही। यहाँ तक कि उसके राज्य में उसका एक भी शत्रु नहीं था। सम्पूर्ण धन धान्य से युक्त उसके राज्य में दान, अहिंसा, सत्य एवं सदाचार का पूर्ण साम्राज्य था; यहाँ तक कि किसी ने रति के लिए काम का सेवन नहीं किया। काम के लिए धन की रक्षा नहीं की, किसी ने धन के लिए अधर्माचरण नहीं किया एवं धर्म के लिए हिंसा नहीं की। देखिए:—

"कश्चित्सिषेवे रतये न कामं,
कामार्थमर्थं न जुगोप कश्चित्।
कश्चिद्धनार्थं न चचार धर्मं,
धर्माय कश्चिन्न चकार हिंसाम्॥"

राज्य कुल की ऐसी सम्पद् एवं सब अर्थों की सिद्धि देख कर राजा ने उस बालक का नाम सर्वार्थ सिद्धि रखा। अपने पुत्र का देवर्षि-सदृश प्रभाव देखकर दैवी माया हृदय मे उत्पन्न हर्ष को न सह सकी और निवासार्थ स्वर्ग चली गई। राजा शुद्धोदन ने उस राजकुमार के लिए सभी प्रकार से विषयों मे आसक्ति उत्पन्न करने वाली सामग्रियाँ एकत्रित की, क्योंकि वह पूर्व ही असित महर्षि से उसके विषय में परम कल्याणप्रद भविष्य सुन चुका था। कुमारावस्था बीतने पर उसका उपनयन-संस्कार विधिवत् सम्पन्न हुआ और अल्पकाल ही मे वह सम्पूर्ण विद्याओं में पारंगत हो गया। युवावस्था मे उसका विवाह यशोधरा नामक कन्या से कर दिया गया और आसक्ति उत्पन्न करने के हेतु उसे महलों के अन्दर ही रहने का आदेश दिया गया। वह महल अप्सराओं के नृत्य-वादनादि से पूर्ण था। कालान्तर में यशोधरा से राहुल नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई।

"काले ततश्चारुपयोधराम्या,
यशोधराम्या स्वयशोधरायाम्।
शौद्धोदने राहुसपत्नवक्त्रो,
जज्ञे सुतो राहुल एव नाम्ना॥"

राजा शुद्धोदन ने पुत्र की भाँति ही पौत्र जन्म में भी महोत्सव मनाया। उसने राज्य का पुत्र के लिए, पुत्र का कुल के लिए और कुल का यश के लिए पालन किया। इस प्रकार अपने पुत्र को वन-गमन से बचाने के लिए राजा ने भाँति-भाँति का धर्माचरण किया।

तृतीय सर्ग—संवेग उत्पत्ति

यद्यपि राजा शुद्धोदन ने सुगत के वन न जाने के लिए सभी सम्भव उपाय किये लेकिन होनी को कोई टाल नहीं सकता है। एक दिन कुमार ने स्त्रियों से पुर-काननों की मनोहरता सुनकर घर के भीतर बँधे हाथी के समान बाहर जाने का विचार किया और अंततोगत्वा राजा को उसके हठ का पालन करना ही पड़ा। रथासीन होकर कुमार के बाहर जाने के लिए उद्यत होने पर सभी ने उसको वैसे ही प्रणाम किया जैसे इन्द्रदेव के जलूस की ध्वजा को प्रणाम किया जाता है। उस समय उत्सुक होकर शीघ्रता करने पर भी उन उत्तम स्त्रियों में किसी किसी की गति को उनके अपने ही विशाल नितम्बों और पयोधरों ने रोका। खिड़कियों से निकले हुए स्त्रियों के मुखकमल ऐसे सुशोभित हुए जैसे महलों में स्वयं कमल प्रस्फुटित हो रहे हैं।

उस कुमार को धीरे-धीरे मार्ग में जाते देख कर सभी स्त्रियों ने उसकी भार्या को सौभाग्यवती कहा। मार्ग में कुमार ने एक ऐसे वृद्ध पुरुष को देखा, जिसकी आकृति अन्य पुरुषों से पृथक थी। उसको निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए कुमार ने सारथि से पूछा—'हे सारथे! यह कौन पुरुष है, इसके केश सफेद हैं, हाथ में लाठी है, भौंहों से आखें ढंकी हैं, अङ्ग ढीले और झुके हैं क्या यह शरीर विकार है? या स्वभाव है? या रोग संयोग?" ऐसा कहे जाने पर सारथि ने राजकुमार से गोपनीय बात बतलाते हुए कहा—'हे राजन्! रूप की हत्या करने वाली, इन्द्रियों की शत्रु यह जरा है, जिसने इसे भग्न कर दिया है। बचपन में इसने भी दुग्ध-पान किया है, फिर कालक्रम से पृथिवी पर पेट के बल चला, क्रम से सुन्दर युवक बना और उसी क्रम से जरा को प्राप्त हुआ है।" कुमार के यह पूछने पर कि क्या यह दोष मुझे भी होगा? सारथि ने 'हाँ' में ही उत्तर दिया। वह महात्मा इस जरा को सुनकर वैसे ही संविग्न हुआ जैसे समीप में महा वज्र का शब्द सुनकर गाय। और सारथि से रथ लौटवा कर वह महल को वापिस आ गया, परन्तु वहाँ उसे मानसिक शान्ति न मिल सकी।

तदनन्तर उसी क्रम से वह पुनः बाहर गया और इस बार रोग से ग्रस्त देह वाले दूसरे मनुष्य को देख कर सारथि से पूछा:—

"स्थूलोदर: श्वास चलच्छरीर:,
　　　　　　　　　　स्रस्तांशुबाहु: कृशपाण्डुगात्र. ।
अम्बेति वाचं करुण ब्रुवाण:,
　　　　　　　　　　पर समाश्रित्य नर: क एष ।।"

"हे सारथि ! यह मनुष्य कौन है ? इसका पेट फूला हुआ है, श्वांस से शरीर में कम्पन हो रहा है, कंधे और बाहुएँ ढीली हैं, गात दुबला और पीला है, दूसरे का सहारा लेकर 'माँ' 'माँ' कह रहा है। सारथि ने उत्तर दिया—"हे सौम्य ! यह रोग नामक महा-अनर्थ है जिसने इस शक्तिमान् को भी परतंत्र कर दिया है। यह दोष सर्व-साधारण है। इस प्रकार रोगों से परिपीड़ित होता हुआ भी कष्ट से आतुर संसार हर्ष को प्राप्त होता है।" यह सुनते ही कुमार अतीव दुःखित हुआ और पुनः राजमहल को वापिस गया, परन्तु इस बार उसे और भी अधिक मानसिक अशांति ने व्यग्र कर दिया। तृतीय बार जब राजकुमार ने बाहर जाने की जिज्ञासा प्रकट की तो राजा ने विशेषता के साथ राज-मार्ग अलंकृत करवाये परन्तु इस बार एक निष्प्राण व्यक्ति को देखकर कुमार ने सारथि से पूछा—"यह कौन है ? इसे चार पुरुष लिए जा रहे हैं, दीन वदन मनुष्य इसके पीछे-पीछे जा रहे हैं, विशेषतया विभूषित होने पर भी इसके लिए रोया जा रहा है।" सारथि ने उत्तर दिया—"सब प्रजाओं का यही अन्तिम कर्म है, हीन, मध्य, महात्मा सभी का विनाश नियत है। "कुमार ने क्षुब्ध हो कर सारथि को रथ लौटाने का आदेश दिया, परन्तु राजपुत्र के ऐसा कहने पर भी वह राजा की आज्ञा से पद्मषण्ड नामक वन को गया जो भिन्न-प्रकार की विशेषताओं से युक्त था।

चतुर्थ सर्ग——स्त्री-निवारण

राजकुमार को उस पद्मषण्ड वन में चञ्चल आखों वाली स्त्रियों ने चारों ओर से घेर लिया। उसके रूप से आकृष्ट उन्होंने हाथों से मुँह पकड़े हुए जँभाई ली और एक दूसरे के ऊपर दृष्टि से प्रहार कर धीरे-धीरे सांसें लीं। इस प्रकार प्रेम-विह्वल स्त्रियों को देखकर पुरोहित पुत्र 'उदायी' ने, जो कि राजा के द्वारा कुमार को विषयानुरक्त करने के लिए ही नियुक्त किया गया था, उनसे कहा कि तुम लोग हाव-भाव से या रूप एवं चतुरता

की सम्पत्ति से स्त्रियों को भी अनुरक्त कर सकती हो, पुनः पुरुषों का क्या कहना ? अतः विश्वास पूर्वक ऐसा प्रयत्न करो जिससे राजा का यह पुत्र यहां से विमुख न जाय। उदायी के यह वचन सुनकर वाणविद्ध सी वे स्त्रियां कुमार को आकृष्ट करने में तुल गई। भयभीत सी उन स्त्रियों ने भौंहों, दृष्टिपातों, हावों, हासों, विलासों और चालों से आकर्षक चेष्टाएं की। राजा के आदेश और कुमार की मृदुता के कारण मद व मदन के वश होकर उन्होने शीघ्र ही अविश्वास छोड़ा। उस रम्य कानन में मदावनत कुछ स्त्रियों ने अपने कठिन, पीन एवं दृढ़ स्तनों से उसे स्पर्श किया। किसी ने वनावटी गिरने का वहाना करके उसका आलिंगन किया। किसी ने मदिरायुक्त मुख से उसके कान में धीरे धीरे यह कहा, "रहस्य सुनिये"। गीले अनुलेप वाली किसी सुन्दरी ने उसके हाथों का स्पर्श किया। कोई आमों की डाल पकड़कर हाव भाव से लटक गई। किसी ने मधुर गीत से अभिनय करते हुए कहा, "तुम वञ्चित हो रहे हो।। प्रतियोग चाहने वाली किसी स्त्री ने आम्रमञ्जरी दिखाते हुए यह कहा, "यह फूल किसका है।" इस प्रकार काम से उच्छृंखल चित्तवाली युवतियों ने उन उन विविध नीतियों से कुमार को आकृष्ट करने का उपक्रम किया।

इस प्रकार आकृष्ट किये जाने पर भी वह धीर इन्द्रिय वाला 'मरना पड़ेगा' इस विचार से उद्वेग युक्त होकर न आनंदित हुआ और न व्यथित। इस प्रकार ध्यान मग्न और विषयों से निरभिलाप देखकर कुमार से उदायी वोला "मैं राजा के द्वारा नियुक्त किया गया तुम्हारा मित्र हूँ। अहित से रोकना, हित में लगाना, विपत्ति में नहीं छोड़ना—ये मित्र के तीन गुण हैं। अतः मैं कहता हूँ कि तरुण स्त्रियों के प्रति उदारता का ऐसा अभाव तुम सुन्दर तरुण के अनुरूप नहीं है।" शास्त्रों से एकत्रित उन वचनों को सुनकर मेघ गर्जन की सी वाणी में कुमार ने पूछा कि "जरा व्याधिश्च मृत्युश्च यदि न स्यादिदं त्रयम्। ममापि हि मनोज्ञेषु विषयेषु रतिर्भवेत्॥" यदि जरा, व्याधि एवं मृत्यु—ये तीनों नहीं रहते तो मनोज्ञ विषयों में मुझे भी आनन्द नहीं होता। यदि स्त्रियों का यही रूप नित्य होता तो इन दोष युक्त विषयों में मेरा मन अवश्य लगता। तव वे स्त्रियां नगर को लौट गई और राजकुमार संध्या समय संसार की अनित्यता को सोचता हुआ महल को लौटा।

पञ्चम सर्ग—अभिनिष्क्रमण

शान्ति के इच्छुक, शाक्य राजपुत्र ने एक वार पुनः राजा से अनुमति पाकर वनभूमि देखने के लिए प्रस्थान किया। वहां पर हवा सूर्य—किरण व

धूल से विवर्ण हुए कृषक को पुरुषों तथा हल में वहन करने के श्रम से विकल बैलों को देखकर उस परम आर्य (कुमार) को बड़ी करुणा हुई। घोड़ी से उतर कर वह जम्बूवृक्ष के मूल के समीप स्वच्छ भूमि पर बैठ गया तथा जगत के जन्म व विनाश की खोज करते हुए उसने मानसिक स्थिरता के उपाय का अवलम्बन किया। उस मानसिक समाधि में उसने जगत की गति को ध्यान से देखा। इसी मानसिक अवलोकन से उसका बल, यौवन एवं जीवन जन्यमद नष्ट हो गया। इस महात्मा की यह निर्मल विशुद्ध बुद्धि बढने लगी। वहीं पर एक सन्यासी को देखकर उसने उससे पूछा तुम कौन हो ?

उसके यह बताने के पश्चात् कि वह जन्म मरण से डर कर मोक्ष चाहने वाला सन्यासी है, कुमार के समक्ष ही वह आकाश में उड़ गया। इसी घटना ने कुमार को "घर से कैसे निकलूं" इस बात के लिए विवश कर दिया और महल में प्रवेश करने के अनन्तर उसने राजा से प्रव्राजक होने की अनुमति माँगी। उसने राजकुमार से कहा, "प्रथम वयस में बुद्धि चञ्चल होने के कारण धर्माचरण में बहुत दोष बताते हैं। "बहु दोषां हि वदन्ति धर्मचर्याम्।' यद्यपि उस समय साश्रु राजा के कहने के अनन्तर वह वनिताओं से परिवेष्टित महल में चला गया परन्तु एक दिन अभिनिष्क्रमण की इच्छा वाले उस कुमार ने सोती हुई वनिताओं को देखकर इस प्रकार निन्दा की कि जीव लोक मे वनिताओं का ऐसा यह स्वभाव वीभत्स एवं अपवित्र है किन्तु वस्त्रों और आभूषणों से ठगा जाता हुआ पुरुष स्त्रियों से अनुराग करता है। उसी रात्रि को गृहद्वार खोल दिया गया और उसने छंदक नामक अश्वरक्षक को जगाकर कंथक नामक घोड़े को लाने का आदेश दिया तथा उस निश्शब्द अश्व पर आरूढ़ होकर वह उस नगर से बाहर हो गया। यह सब उसके अमरत्व प्राप्त करने के हेतु दैव योग से ही हुआ।

षष्ठ सर्ग—छंदक विसर्जन

क्षण भर में ही वह कुमार भार्गव आश्रम में पहुंच कर घोड़े से उतर गया। घोड़े को शतशः कृतज्ञता के साथ धन्यवाद देकर छंदक से कहा कि हे छंदक। तुम राजा से मेरे प्रवास की सूचना इस प्रकार देना कि आपका पुत्र उस परम शान्ति की खोज में निकला है जिससे पुनः जरा व्याधि एवं मृत्यु का आवागमन न हो परन्तु छंदक ने उत्तर दिया :

"नास्मि यातुं पुरं शक्तो, दह्य मानेन चेतसा ।
त्वामरण्ये परित्यज्य सुमन्त्र इव राघवम् ॥"

"आपको जंगल में छोड़कर मैं नगर को वापिस जाने में असमर्थ हूँ। आपके बिना नगर में जाने पर राजा मुझे क्या कहेंगे?" परन्तु भगवान सुगत की मनोहर वाणी के समक्ष कंथक एवं छन्दक को नगर के लिए लौटना ही पड़ा। तदनन्तर राजकुमार ने उस राजमुकुट के तलवार से काट डाला और दैवी व्याधि से वनोचित धनुष एवं वस्त्रों का परिधान किया। छन्दक साश्रु होकर वापिस लौट गया।

सप्तम सर्ग—तपोवन प्रवेश

तपोवन में प्रवेश करने पर मुनियों द्वारा विस्मय से—'क्या यह वसुओं में से अष्टम है या अश्विनों में से गिरा हुआ एक?" इस प्रकार के वचन जोर जोर से उच्चरित हुए। तब उन आश्रम वासियों द्वारा यथावत पूजित और निमंत्रित होने पर उसने एक तपस्वी से तप जानने की इच्छा प्रकट की। तपस्वी से तपस्या का फल स्वर्ग प्राप्ति जानकर उसे संतोष नहीं हुआ क्योंकि स्वर्ग प्राप्त करने से और भी बड़ा बंधन मिलता है। वायु से जीव बराबर डरते हैं और यत्नपूर्वक पुनर्जन्मचाहते हैं। प्रवृति होने पर मृत्यु निश्चत है। अतः वे जिससे डरते हैं उसी में डूबते हैं। कोई इस लोक के लिए कष्ट करते हैं, दूसरे स्वर्ग के लिए श्रम करते हैं। निश्चय ही सुख की आशा से दीन प्राणि जगत विपत्ति में पड़ा रहता है। इस तरह उसने युक्ति युक्त बहुत कुछ कहा और तब सूर्य अस्त हुआ। उसके बाद उसने वन में प्रवेश किया और कई रातो तक वहां रहा। उसके वहाँ से चलने पर आश्रम वासी उसके पीछे पीछे हो लिए। उनके तपों का सन्मान करता हुआ वह मंगलमय सुन्दर वृक्ष के नीचे ठहर गया। एक तपस्वी के द्वारा विन्ध्य कोष्ठ जाने की सलाह पाकर राजकुमार नैष्ठिक कल्याण में व्यग्र अराड़ मुनि के पास पहुँचा। उन आश्रमवासियों ने भी उसका विधिवत् सन्मान कर तपोवन में प्रवेश किया।

अष्टम सर्ग—अंतःपुर विलाप

अपने निर्मम स्वामी के वन चले जाने पर वह अश्वरक्षक स्वामि-वियोग की चिन्ता करता हुआ, उस घोड़े के साथ जिस मार्ग से वह एक दिन में गया था, उसी रास्ते से आठ दिन में नगर को लौटा। उसे अकेला देखकर नगर वासी साश्रु होकर पूछने लगे कि नगर व राष्ट्र को आनन्दित

करने वाला वह राजपुत्र कहाँ है ? तुमने उसका हरण किया है। तब उसने उन भक्त लोगों से कहा—"मैंने राजपुत्र को नहीं छोड़ा किन्तु स्वयं उन्होंने वन में मुझे रोते हुए को एवं गृहस्थ वेश को विसर्जित किया है।" ऐसा सुनकर नगर वासी, स्त्रियाँ एवं राजा—सभी अपार शोक सागर में निमग्न होकर नाना प्रकार से विलाप करने लगे। सभी स्त्रियों ने वैधव्य सा वेश धारण कर लिया और शोक से संतप्त हो उठीं। उस समय राजा की पटरानी गौतमी जिसका बछड़ा नष्ट हो गया था भुजायें फेंक कर पृथ्वी पर गिर पड़ी। यशोधरा की वियोग दशा का चित्रण तो कवि लेखनी के सामर्थ्य की ही बात नहीं है। यह तो रही जीवधारी प्राणियों की बात यहाँ तक कि नगर के प्रासाद भी रनिवासों के साथ वियोग में मानों आँसू भर-भर कर रो रहे थे।

> इमाश्च विक्षिप्त विटङ्क बाहवः,
> प्रसक्त पारावत दीर्घनिस्वनाः।
> विनाकृतास्तेन सहावरोधनै,
> भृशंरुदन्तीव विमानपङ्क्तयः।"

यह करुण प्रलाप सुनकर उन स्त्रियों ने भुजाओं से एक दूसरे का आलिंगन कर आँखों से उसी प्रकार आँसू बहाने लगीं जैसे कि कम्पित लतायें अपने फूलों से मधु बहाती हैं। जब यशोधरा रोकर यह कहती थी कि मुझ अनाथा धर्मसहचारिणी को छोड़कर यदि वह धर्म करना चाहते हैं तो मेरे बिना उन्हें कहाँ से धर्म होगा। तो उसी समय गौमती साश्रु होकर विलाप करती कि मेरा हृदय अति दारुण है, पत्थर का बना है या लोहे का, जो सुख में पले स्वामी के वन चले जाने पर विदीर्ण नहीं हो रहा है। यह सभी दृश्य देखकर राजा भी शोक से आहत होकर वैसे ही काँप उठा जैसे वज्र का शब्द श्रवण करके हाथी काँप उठता है।

छंदक और कंथक दोनों को देखकर और पुत्र का दृढ़ निश्चय सुनकर राजा वैसे ही गिर पड़ा जैसे उत्सव समाप्त होने पर इन्द्र की ध्वजा गिर पड़ती है।

इस प्रकार—

> "दशरथ इव राम शोक वश्योवहु,
> विललाप नृपो विसंज्ञ कल्पः।"

नवम सर्ग—कुमार—अन्वेषण

तब उस समय मंत्री और पुरोहित दोनों ही राजा के द्वारा अश्रु रूप अंकुश से आहत होकर, विद्ध हुए अच्छे घोड़ों के समान उस वन को चले। वन में भार्गव ऋषि के आश्रम में पहुँच कर भार्गव को प्रणाम करके उन दोनों ने पूछा कि क्या राजकुमार इस आश्रम में आये थे। भार्गव ऋषि के द्वारा यह पूछने पर कि वह अराड़ के आश्रम की ओर गये हैं, वे तुरन्त ही वहाँ पहुँचे और राजकुमार को एक वृक्ष की जड़ में बैठे देखा। यथावत् पूजन कर दोनों ने कुमार से नगर लौट चलने के लिए आग्रह किया एवं राजा, गोमती, यशोधरा तथा राहुल की वियोगावस्था एवं उनके संदेश को उससे निवेदित किया, परन्तु राजकुमार ने मुहूर्त भर ध्यान किया और विनययुक्त यह उत्तर दिया कि मैं पुत्र के प्रति पिता का भाव जानता हूँ, विशेषकर मेरे प्रति जो राजा का भाव है। यह जानता हुआ भी मैं रोग, बुढ़ापे और मौत से डर कर अन्य उपाय के अभाव में स्वजन-परित्याग कर रहा हूँ। इस प्रकार पुनः उन दोनों से अनेक प्रकार के प्रत्यावर्तन के लिए आग्रह किया, परन्तु कुमार को उनका यह कथन अपने व्रत से डिगा न सका और अंत में दोनों किसी तरह निराश होकर नगर को लौट आये।

दशम सर्ग—बिम्बसार का आगमन

तदनन्तर वह राजकुमार चञ्चल तरंगों वाली गंगा को पार कर मगध देश की ओर गया। उसे देखकर जन समूह हर्ष एवं विस्मय के साथ उसके पीछे पीछे एकत्रित होकर चलने लगा। बिम्बसार ने बाहरी महल से विशाल जनसमूह को देखा और उसका कारण पूछा। शाक्य राज्य के परम ज्ञानी राजकुमार को जान कर उसके मन मे आदर उत्पन्न हुआ। पाण्डव पर्वत के ऊपर आसनस्थ राजकुमार के पास जाकर राजा बिम्बसार ने उसका स्वास्थ्य आदि पूछकर उसका भाव जानने को इच्छा से यों कहा कि हे राजकुमार आप किस कारण से सूर्य के समान कुल क्रम को छोड़कर भिक्षावृति में रत हैं? राज्य में नहीं। आपका शरीर लाल चन्दन के योग्य है। काषाय स्पर्श के योग्य नही। यदि आप पिता से पराक्रम पूर्वक राज्य नहीं लेना चाहते हैं तो मेरे आधे राज्य का आप पालन करें क्योंकि धर्म अर्थ, काम की सम्पूर्ण प्राप्ति ही मनुष्यों का सम्पूर्ण पुरुषार्थ है। बुद्ध धर्म प्राप्त कर सकता है, इसीलिए युवक के लिए काम, मध्य के लिए वित्त और बूढ़े के लिए ही धर्म बताया गया है। यदि आपकी इच्छा धर्म करना ही है तो यज्ञ कीजिये यह आपका कुल धर्म है। यज्ञों द्वारा हाथी की पीठ

पर चढ़कर इन्द्र भी स्वर्ग गया था इस प्रकार के विम्वसार के वचनों को सुनकर भी राजकुमार विचलित नही हुआ।

एकादश सर्ग—काम निन्दा

राजा विम्बसार की वातों का उत्तर शौद्धोदनि इस प्रकार देता है कि आप विशाल हर्यङ्क कुल मे पैदा हुए हैं। अतः आपके लिए ऐसा कहना आश्चर्यजनक नहीं है। धन कम होने पर जो मनुष्य संसार में मित्रों के काम में हाथ वॅटाते हैं, अपनी बुद्धि से मैं उन्हीं को मित्र समझता हूँ। हे राजन्! सर्पों से मै उतना नहीं डरता हूॅ, न आकाश से गिरे वज्रों से, न हवा से मिली आग से जितना कि विषयों से डरता हूॅ। काम अनित्य है। कुशल रूप धन के चोर हैं और संसार में माया के समान है। जो काम से अभिभूत हैं वे मृत्युलोक में क्या स्वर्ग में भी शान्ति नहीं पाते। तृष्णावान् को काम से तृप्ति नही होती जैसे हवा का साथ पाकर आग को। विषयों मे स्वाद कम है वंधन अधिक है, सज्जनों द्वारा निन्दा होती है और पाप नियत है। जैसे हड्डी चबाकर भी भूखे कुत्ते तृप्त नहीं होते वैसे ही जिन्हे भोगकर भी लोग तृप्त नहीं होते हैं, जीर्ण अस्थि पिञ्जर के समान उन कामों मे किस आत्मवान् को आनन्द होगा।

"अस्थि क्षुधार्ता इव सारयेमा,
भुक्त्वापि यान्नैव भवन्ति तृप्ताः।
जीर्णास्थि कङ्काल समेषु तेषु,
कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ॥"

दुःख व सुख को मिला हुआ, राज्य व दासत्व को मिला हुआ देखकर राज्य व दासत्व को मै समान समझता हूॅ। क्षणभंगुर एवं शुभ-परिवेष्ठित राज्य में यदि राजा विश्वास करता है तो वह मरता है, संसार में मनुष्य को सन्तोष होने पर सव विशेषताऍ विशेषता रहित हैं; न तो क्रोध से मैने वन में प्रवेश किया है, न शत्रु भय से। संसार रूप तीर से विद्ध होकर ही शान्ति पाने की इच्छा से मैं घर से निकला हूॅ। स्वर्ग का निष्कण्टक राज्य भी मैं पाना नहीं चाहता हूॅ। मृत्युलोक का क्या कहना? हे राजन्! जन्मचक्र में मेरा मन नहीं लगता है। वादल की वृष्टि से तरित लता के समान यह सर्व व्यापी प्रवृत्ति चञ्चल है। राजा ने हाथ जोड़कर कहा—'आप यथेष्ट निर्विघ्न प्राप्त करने के पश्चात् मेरे ऊपर भी अनु-कम्पा कीजिएगा।" तव वैसा ही हो" इस तरह राजा के लिए दृढ़ प्रतीज्ञा कर वह वैश्वतर आश्रम की ओर चला गया।

द्वादश सर्ग—अराड दर्शन

अराड मुनि के आश्रम में पहुँचने पर राजकुमार से मुनि ने स्वागत करते हुए कहा कि आपका मन सब प्रकार से धैर्यवान् व ज्ञानवान् है जो आप विषाक्त फल वाली लता की तरह लक्ष्मी को तजकर आये हैं। इसलिए इस परम धर्म को जानने के लिए आप उत्तम पात्र हैं; ज्ञान रूप नाव पर चढ़कर दुःख रूप सागर को पार कीजिए। अराड की यह बात सुनकर वह नर-श्रेष्ठ अत्यधिक प्रसन्न हुआ और जरा मरण से मुक्ति पाने का उपाय पूछने लगा। अराड मुनि ने कहा कि जो जन्म लेता है, बूढ़ा होता है, पीड़ित होता है, उसे व्यक्त समझना चाहिए और जो इसके विपरीत है वह अव्यक्त है। "मेरा यह है, मैं इसका हूँ।" इस दुःख के अभिमान को अभ्यवपात जानना चाहिए जिसके द्वारा संसार में पतन होता है। उसी मुनि की यह बात सुनकर राजा के पुत्र ने उपाय और नैष्ठिक पद के बारे में पूछा। अराड ने शास्त्रानुसार उसी धर्म को उसके लिए अन्य तरीके से संक्षेप में स्पष्ट शब्दों मे कहा कि नैष्ठिक प्रारम्भ में घर छोड़कर भिक्षु वेष धारण करता है और सदाचार व्यापीशील ग्रहण करता है। समाधि धारण करने के अनन्तर बुद्धिमान पुरुष शरीर निवृत्ति के लिए ज्ञान-मार्ग पर आरूढ़ होता है। वह आत्मज्ञ देह से मुक्ति पाकर क्षेत्रज्ञ मुक्त कहा जाता है, तथा जो परब्रह्म है, चिह्न रहित, ध्रुव एवं अविनाशी है। उसे तत्वज्ञ मोक्ष कहते हैं। अराड के इस धर्मोपदेश से वह राजकुमार संतुष्ट न होकर उद्रक के आश्रम की ओर गया। संज्ञा (चेतना) और असंज्ञा (अचेतना) का दोष जान कर उद्रक मुनि ने इन दोनों से रहित मार्ग बताया परन्तु इस अवस्था को भी प्राप्त कर मनुष्य संसार में पुनः लौट आता है अतः परमपद पाने के इच्छुक बोधिसत्व ने उद्रक को भी त्याग दिया।

नैरञ्जना नदी के पावन तट पर निवास करते हुए उस राजकुमार ने जम्बू वृक्ष के मूल में ज्ञान प्राप्त करने की विधि को ध्रुव समझा और इसीलिए बुद्धत्व प्राप्ति का निश्चय कर वह पीपल के वृक्ष के नीचे गया, जहाँ की भूमि हरे तृणों से ढकी थी। जिस समय निश्चय करके बुद्ध भगवान ने आसन ग्रहण किया उसी समय देवता लोग अत्यधिक आनंदित हुए, पशु-पक्षी बोले नहीं और हवा से आहत होने पर भी जंगल के वृक्ष से शब्द नहीं हुआ।

त्रयोदश सर्ग—मार पराजय

मोक्ष के लिए प्रतिज्ञा कर जब राजर्षि वंश में उत्पन्न वह महर्षि अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठ गया तो संसार को हर्ष हुआ किन्तु सद्धर्म-शत्रु मार को भय हुआ। संसार मे जिसे कामदेव, चित्रायुध तथा पुष्पशर कहते हैं उसी मोक्ष शत्रु को जो काम-संचार का अधिपति है—मार कहते हैं। बुद्ध भगवान के आसनस्थ होने पर वह मार फूलों का धनुष तथा जगत को मूढ़ करने वाले पाँच तीर लेकर अपनी संतानों के साथ अश्वत्थ वृक्ष के नीचे गया और उस ऋषि से बोला:—

उत्तिष्ठ भो: क्षत्रिय ! मृत्युभीत,
चर स्वधर्म त्यज मोक्षधर्मम् ।
बाणैश्च यज्ञैश्च विनीय लोकं,
लोकात्पद प्राप्नुहि वासवस्य ॥

"ऐ मौत से डरने वाले क्षत्रिय! उठो, स्वधर्म का आचरण करो, धर्म का त्याग करो। बाणों व यज्ञों से संसार को जीतो और संसार से इन्द्र का पद प्राप्त करो।"

इस प्रकार कहे जाने पर भी जब शाक्य मुनि ने ध्यान न दिया, और न आसन तोड़ा, तब अपनी कन्याओं और पुत्रों को आगे कर मार ने उसके ऊपर तीर छोड़ा, जिससे विद्ध होकर महादेव भी शैलेन्द्र पुत्री के प्रति चलायमान हुआ उसी बाण की उस मुनि ने जरा भी चिन्ता न की। तब तो मार ने नाना प्रकार से बुद्ध को डराने की कोशिशे कीं। कुछ भूत उसे डराने का प्रयत्न करते हुए खड़े रहे उनकी लटकती हुई अनेक जीभे हिल रही थीं, दांतों के अग्र भाग तेज थे, आँखें सूर्य मण्डल के समान थीं, मुँह खुले हुए थे और कान बर्छे के समान कठोर थे। इस प्रकार के भूतों से भी जब बुद्ध न डिग सका तो दूसरे ने उनके ऊपर पहाड़ की चोटी के समान जलता हुआ कुंदा फेंका, जैसे ही वह फेंका गया कि उस मुनि के प्रभाव से आकाश में ही उसके सौ टुकड़े हो गए। यद्यपि शरीर और मन के लिए ऐसी विपत्तियाँ या पीड़ाएँ दी जा रही थीं तो भी अपने निश्चय का बंधु के समान आलिङ्गन कर शाक्य मुनि विचलित न हुआ। उसी समय अदृश्य रूप किसी जीव ने आकाश से ही ऋषि के

प्रति द्रोही मार को देखकर यह शब्द कहे "हे मार! तुम्हें व्यर्थ श्रम नहीं करना चाहिए। हिंसा भाव छोड़ो और शान्त हो जाओ, क्योंकि तुम इसे कँपा नहीं सकते जैसे हवा से मेरु पर्वत कँपाया नहीं जा सकता। इसलिए हे मार! अपनी महिमा का अभिमान मत करो, चपल श्री पर विश्वास करना उचित नहीं, अपनी स्थिति अस्थिर होने पर क्यों मद कर रहे हो। उसकी यह बात सुनकर और महामुनि की स्थिरता देखकर विफल प्रयत्न मार उदास होकर अपने तीरों के साथ वापस चला गया। उस पापी के हार कर चले जाने पर दिशाएँ प्रसन्न हुईं, चन्द्रमा शुशोभित हुआ, आकाश से पृथ्वी पर पुष्प वृष्टि हुई और निष्पाप स्त्री के समान निर्मल रात्रि की शोभा हुई।

चतुर्दश सर्ग--बुद्धत्व प्राप्ति

धैर्य एवं शान्ति से मार की सेना को जीतकर परमार्थ जानने की इच्छा से उस ध्यान पटु ने ध्यान किया। ध्यान में उसने हजारों जन्मों के आवागमन को देखकर यह निश्चय किया कि यह संसार रक्षा रहित है और पहिये के समान घूमता रहता है कदली गर्भ के समान् यह असार भी है। उसने अपनी दिव्य चक्षुओं से निर्मल दर्पण की भांति देखा। निकृष्ट व उत्कृष्ट कर्म वाले जीवों का पतन व जन्म देखते हुये उसकी करुणा बढ़ी। अत्यन्त भयावह नरक मे उन पापियों को अनेक दुख भोगने पड़ते हैं। कोई गर्म लोहे से जलाया जाता है तो कोई आरे से काटा जाता है। पापात्मा जो हँसते हुए पाप कर्म करते हैं। रोते हुए दुख का अनुभव करते हैं।

उसने यह बात जान ली कि कर्म भव से जन्म होता है एवं वेदना का कारण संसार मे जन्म मात्र है। अतः मोक्ष पाना ही इस यातना से बचने का उपाय है। द्वादश निदानों का वर्णन करने के पश्चात ऋषि ने प्रतीत्यसमुत्पाद (कार्य कारण सिद्धान्त) समझा और इस प्रकार उसको सम्पूर्ण जगत का ज्ञान हो गया। बुद्धत्व प्राप्ति के अनन्तर काव्य की समाप्ति होती है यद्यपि चतुर्दश सर्ग में मूल संस्कृत में ही केवल ३१ श्लोक ही उपलब्ध हैं परन्तु कुल संख्या १०८ मानी जाती है। ये श्लोक बाद में जोड़े गए समझे जाते हैं।

अन्तिम पद्य में ग्रंथ का प्रयोजन बताते हुए कवि ने कहा है कि काव्य कौशल या पाण्डित्य दिखाने के लिए नहीं है किन्तु जगत के सुख

एवं उपकार के लिए यह रचा गया है। इसमें सन्देह का लेश मात्र नहीं कि इसग्रंथ की रचना व्याधि जरा मत्यु से परिवेष्टित मानव को इस संसार से पार उतारने के लिए ही की गई है—इसी उद्देश्य की पूर्ति कवि ने इस रचना में की है।
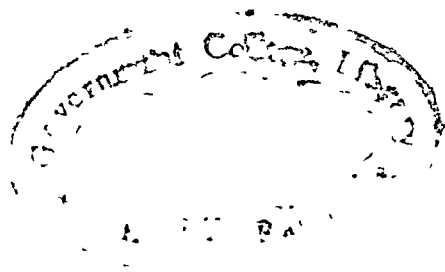
सौन्दरनन्द

सौन्दरनन्द अश्वघोष की द्वितीय कृति है। सर्व प्रथम डा० हरप्रसाद शास्त्री ने नैपाल में प्राप्त पाण्डुलिपियों के आधार पर इसको प्रकाशित कराया। १९२२ में डा० विमलाचरण लाहा ने इसका बंगलानुवाद निकाला। डा० जान्स्टन ने भी सन् १९२८ में इसका प्रामाणिक संस्करण निकाला। यह ग्रंथ चीनी एवं तिब्बती भाषा में अप्राप्य है। १२वीं शताब्दी में इस ग्रंथ को अमरकोष के टीकाकार सर्वानन्द बनर्जी ने प्रमाण रूप में उद्धृत किया।

विन्टरनित्स के अनुसार विनय पिटक तथा निदान कथा में नन्द को उसकी इच्छा के विरुद्ध बुद्धधर्म में सम्मिलित किया गया था। डा० हरप्रसाद शास्त्री भी इसी मत का समर्थन करते हैं। यह ग्रंथ अठारह सर्गों का काव्य है। इसी की दो प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं। दोनों दूषित तथा अस्तव्यस्त अवस्था में हैं तथा नैपाल के महाराजा के पुस्तकालय में सुरक्षित हैं। इनके आधार पर शुद्ध और संस्कृत पाठ का निर्धारण करना असम्भव सा है।

सौन्दरनन्द की कथावस्तु में पर्याप्त परिवर्तन किया गया है। पालि तथा संस्कृत की कथा वस्तु भिन्न-भिन्न है। संस्कृत के अनुसार सुन्दरी नन्द से शीघ्र प्रत्यावर्तन के लिए प्रतिज्ञा कराती है जब कि पालि में वह विरह में चीत्कार करती है। संस्कृत संस्करण में वैदेह मुनि (आनन्द) नन्द को प्रव्रजित करते हैं जबकि पालि में इस प्रकार के किसी व्यक्ति का उल्लेख नहीं है। संस्कृत में स्वर्ग में प्रदर्शित वानरी एकाक्षिणी है जब कि पालि में उस वानरी के न कान हैं और न नाक एवं पुच्छ।

सौन्दरनन्द में सुन्दरी और नन्द की प्रेम कथा का वर्णन है:—

"चक्रवाक्येव हि चक्रवाकः, तया समेतः प्रियया प्रियार्हः।"

बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द पृथक् कथा वस्तु पर आधारित होने भी एक दूसरे के पूरक हैं। कपिलवस्तु का निर्माण, शाक्यवंश की उत्पत्ति का वर्णन बुद्धचरित में अप्राप्य है तथा सौन्दरनन्द में सविस्तर वर्णित है। बुद्धचरित में बुद्ध की जीवनी का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है जबकि सौनन्दरनन्द में अत्यल्प है। इसके अतिरिक्त दोनों में भाषा-शैली

धर्मोपदेश तथा भावमयता में साम्य है क्योंकि दोनों एक लेखनी से ही नस्यूत हैं। बुद्धचरित में बौद्धधर्मों का प्रतिपादन पारिभाषिक एवं क्लिष्ट शैली में हुआ है वहीं सौन्दरनन्द में उपमाओं के द्वारा सरल एवं सुबोध भाषा में किया गया है। बुद्धचरित के प्रणयन में कवि का उद्देश्य बुद्ध के जीवन को प्रस्तुत करना था जबकि सौन्दरनन्द में उसका उद्देश्य धर्म की व्याख्या तथा प्रचार करना था। वस्तुतः सौन्दरनन्द काव्यत्व की दृष्टि से बुद्धचरित से अत्यधिक प्रौढ़ हैं। इन दोनों के पौर्वापर्य पर विद्वानों में मतभेद है। विन्टरनित्स सौन्दरनन्द को अश्वघोष की प्रथम वृत्ति मानते हैं। इसी मत का प्रतिपादन पूर्वतः जान्स्टन महोदय ने भी किया था परन्तु अब वे बुद्धचरित को सौन्दरनन्द से पूर्व का मानने लगे हैं। प्रायः सभी विद्वान् अन्तिम मत के पक्ष में अधिक हैं।

सौन्दरनन्द—कथा सार

प्रथम सर्ग—कपिलवस्तु

प्राचीन युग में कपिल गौतम नामक एक धार्मिक मुनि हुए थे। उन्हीं के आश्रम में कुछ इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार रहने की इच्छा से गये। वहाँ उन्होंने मुनि कपिल गौतम को ही अपना उपाध्याय बनाया अतः वे कौत्स, गुरु के गोत्र से गौतम कहलाये तथा वे ही इक्ष्वाकुवंशी शाकवृक्षों से आच्छादित निवास स्थान पर रहने के कारण शाक्य नाम से अभिहित हुए। एक दिन मुनि के द्वारा आकाश में उड़ कर आश्रम के चारों ओर जल की धारा गिराई गई और इस प्रकार जल की धारा से घिरी हुई इस भूमि पर कपिलवस्तु नगर का निर्माण किया गया। उन वीरों ने सभाओं, उत्सवों, दानों और धार्मिक क्रियाओं से संसार के उस नगर को अलंकृत किया। उन्होंने अन्याय पूर्वक कोई कर नहीं लगाया इसलिए अल्पकाल में उस नगर को धन, जन से भर दिया।

द्वितीय सर्ग—राजा शुद्धोदन

गौतम वंश-परम्परा से शुद्धोदन नामक राजा उस राज्य का अधिकारी हुआ। विषयों में अनासक्त वह राजा लक्ष्मी प्राप्त करने के पश्चात् उद्धत नहीं हुआ। वह बलवान, सात्विक, विद्वान, पराक्रमी, नीतिमान्, धीर तथा सुन्दर था। उसके सुशासन और रक्षा-प्रबन्ध के

कारण प्रजा निर्भय होकर सुख की नींद सोती थी। कालान्तर में राजा के दो पुत्र उत्पन्न हुए। उस राजा ने उन दोनों को परम प्रसन्नता पूर्वक पाला पोसा। उन पुत्रों के बीच वह राज्य ठीक ऐसे शोभित हुआ जैसे हिमालय एवं पारियात्र के बीच स्थित हुआ मध्यदेश। बूढ़े, रोगी एवं मरे हुए व्यक्तियों को देखकर उद्विग्नचित्त हो सिद्धार्थ ने संसार को अनित्य व असार समझा और उद्वेग के कारण मोक्ष में मन लगाया। रात्रिकाल में उस राजभवन से सोती हुई स्त्रियों को छोड़कर उदास होकर वन को चला गया।

तृतीय सर्ग—तथागत को ज्ञान प्राप्ति

वन में स्थित तथागत ने मोक्षवादी अराड एवं शमवादी उद्रक के मार्गों की उपेक्षा करते हुए पीपल के वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया। दुःख उसका कारण, निरोध एवं निरोध का उपाय इन चार परम सत्यों का विवेचन करते हुए मुनि ने पहले पहल कौण्डिन्य को दीक्षित किया। काशी, गया, वनप्रस्थ भ्रमण करते हुए वे पुनः कपिलवस्तु में पिता के पास पहुँचे। राजा को प्रजा के सहित दुःखित देखकर वे आकाश में उड़ गए। कृत युग में सद्गुणों से सम्पन्न होने पर भी, मुनि के आश्रम में रहकर लोगों ने परम कल्याणकारी धार्मिक दस कुशलों का आचरण किया।

चतुर्थ सर्ग—पत्नी अनुमति

चक्रवाकी से युक्त चक्रवाक के समान, कामासक्त नंद अपनी भार्या के साथ विहार कर रहा था। जिस समय कपिलवस्तु में मुनि तथागत धर्मोपदेश कर रहे थे। उनकी स्त्री, शोभा रूप के कारण सुन्दरी, हठ और गर्व के कारण मानिनी तथा दीप्ति एवं मनस्विता के कारण भामिनी इन तीन नामों से पुकारी जाती थी। वे दोनों एक दूसरे से वियुक्त नहीं रह सकते थे क्योंकि—

"तां सुन्दरीं चेन्न लभेत नन्दः,
सा वा निषेवेत न तं नतभ्रूः।
द्वन्द्वं ध्रुवं तद्विकलं न शोभेत,
अन्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ॥"

देव सदन तुल्य महल में नाना प्रकार की काम क्रीड़ाओं में लीन नन्द आनन्द कर रहे थे। उसी समय बुद्ध भगवान् भिक्षा के लिए उनके राजभवन में गए। अपने भाई के घर में नौकरों की असावधानी के कारण बिना भिक्षा के ही उन्हें लौट जाना पड़ा, परन्तु एक स्त्री ने यह सब नन्द से निवेदन करते हुए कहा—"हमारे ऊपर अनुग्रह करने के लिए मैं समझती

हूँ, भघवान बुद्ध हमारे घर में प्रविष्ट हुए थे, किन्तु भिक्षा, वचन या आसन पाए विना ही हमारे यहाँ से लौट रहे हैं, जैसे सूने जङ्गल से।"

तब मस्तक पर पद्मतुल्य अञ्जलि बाँध कर उसने अपनी प्रिया से जाने की आज्ञा माँगी—"गुरु को प्रणाम करने के लिए जाऊँगा, इस विषय में तुम्हें मुझे आज्ञा देनी चाहिए।" प्रिया ने उत्तर दिया—"आप गुरु के दर्शनार्थ जाना चाहते हैं, मैं आप के धर्म में बाधा नहीं डाल सकती; हे आर्य पुत्र, जाओ और शीघ्र ही लौट आओ जबतक कि यह विशेषक माथे की बिंदी, सूखने न पाए।" चिन्ता के कारण उदास और निश्चल आँखों से वह सुन्दरी उस जाते हुए प्रियतम को ध्यानपूर्वक देखती रही। बुद्ध की भक्ति ने नन्द को आगे की ओर खींचा, फिर पत्नी के प्रेम ने उसे पीछे की ओर खींचा। अनिश्चय के कारण वह न आगे ही गया और न खड़ा ही रहा जैसे तरङ्गों पर चलने वाला राजहंस न आगे ही बढ़ता है और न स्थिर ही रहता है।

पञ्चम सर्ग—नन्द दीक्षा

तदनन्तर नन्द ने राजमार्ग पर भक्त जनता से घिरे हुए बुद्ध को प्रणाम करके, अपने गृह से भिक्षा बिना ही लौट आने के लिए क्षमा माँगी परन्तु बुद्ध ने भोजन की अनिच्छा प्रकट करते हुए नन्द को अपना भिक्षा पात्र दिया। प्रिया के अनुराग के कारण वह पात्र लेकर भी घर जाने की इच्छा करने लगा। तब मुनि ने उसके मार्ग द्वार को ढक कर उसे मोह में डाल दिया और भिन्न-भिन्न प्रकार से उपदेश दिया—"हे सौम्य, जब तक घातककाल समीप में नहीं आता, तब तक बुद्धि को शान्ति में लगाओ। संसार को कामोपभोगों से तृप्ति नहीं है। धनों मे श्रद्धा रूपी धन श्रेष्ठ है, रसों मे प्रज्ञा रूपी रस तृप्तिकर है, सुखों मे अध्यात्म सुख प्रधान है और दु:खों में अज्ञान-दुख अत्यंत दुख:दायी है। प्राणियों के लिए बुढ़ापे के समान और कोई गन्दगी नहीं है, संसार मे रोग के समान और कोई अनर्थ नहीं है तथा पृथ्वी पर मृत्यु के समान और कोई भय नहीं है। इन तीनों को लाचार होकर भोगना ही पड़ेगा।" इसके पश्चात् बुद्ध ने आनन्द से नन्द को प्रव्रजित करने के लिए कहा परन्तु नन्द की अनिच्छा को जानकर उसने पुन: उपदेश दिया कि संसार रूपी बीहड़ वन में लीन होकर (हे नन्द) तुम, काफिले से भटके हुए के समान, कल्याणकारी मार्ग पर चढ़ाये जाने पर भी क्यों नहीं चढ़ना चाहते हो। हितैषी और कारुणिक विनायक बुद्ध के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर नन्द ने कहा—"आपकी आज्ञानुसार मैं आपके वचन का पूरा पूरा पालन करूँगा।"

षष्ठ सर्ग—भार्या विलाप

तब बुद्ध के द्वारा पति का अपहरण होने पर उस सुन्दरी ने अपने प्रियतम की अथक प्रतीक्षा की। श्रम के कारण उसके ललाट पर पसीना निकल आया, वह प्रसाद गुण युक्त हो, मन ही मन सोचने लगी—मेरे प्रिय का हृदय अवश्य ही विरक्त हो गया है क्योंकि यदि उन्हें मुझसे अनुराग होता तो क्या मेरे दुःखी हृदय को आकर वे संतोष प्रदान न करते? इस प्रकार तर्क-वितर्क में पड़ी हुई सुन्दरी से उसकी सहचारिणी ने कहा—"हे स्वामिनि! वह आपके लिए घर में रहना चाहते हैं, आपके संतोष के लिए जीवित रहना चाहते हैं, किन्तु भ्राता आर्य तथागत ने उन अश्रुजल से आर्द्र-मुख वाले को प्रव्रजित कर दिया है।" तब पति का यह समाचार सुनकर काँपती हुई वह सुन्दरी लम्बी लम्बी साँसें लेकर मूर्छित हो गई। बाज से आहत चक्रवाकी की तरह वह क्रन्दन करने लगी। वह रोई, कुम्हलाई, चिल्लाई, इधर-उधर घूमी, खड़ी रही, विलाप किया, क्रोध किया, मालाओं को बिखेरा, दाँतों से अपने मुख को काटा और वस्त्र को चीरा। उसके इस कारुणिक रुदन एवं नाना प्रकार के विलापों से संतप्त होकर सभी स्त्रियों के बीच माननीया एक स्त्री ने कहा—"तुम राजर्षि की पत्नी हो। अपने पति के धर्म की शरण में जाने पर तुम्हारे लिए शोक करना उचित नहीं क्योंकि इक्ष्वाकु वंश में तपोवन पैतृक सम्पत्ति-स्वरूप है।" इस प्रकार सान्त्वना दिये जाने पर वह सुन्दरी, जिसके हृदय को उसके प्रिय ने हर लिया था, अपने निवास में चली गई।

सप्तम सर्ग—नन्द विलाप

दूसरी ओर भार्या-विषयक मानसिक विचारों में डूबे रहने के कारण नन्द को आनन्द प्राप्त न हो सका। उसने अपने से वियुक्त रुदन करती हुई प्रिया की परिकल्पना की, आम्र पर बैठी कोयल को देखकर उसने अट्टालिका पर खड़ी सफेद वस्त्र वाली प्रिया की शिखा की कल्पना की। लताओं का वृक्षों से आलिङ्गन करना उसे असह्य प्रतीत हुआ। मयूर एवं भ्रमरों ने उसे और भी कामोद्दीपन की सामग्री प्रदान की। अतः वह धैर्य छोड़कर प्रलाप करने लगा कि मैं समझता हूँ कि यद्यपि मैं दो गुरुओं से उपदिष्ट हूँ तथापि मैं प्रिया की ललित वाणी के बिना जीवित नहीं रह सकता हूँ। इस प्रकार वह प्रिया के 'विशेषक सूखने से पूर्व ही प्रत्यागमन' को बार बार सोचने लगा। इस प्रकार तर्क-वितर्क में डूबते उतराते हुए उसने यह निश्चय किया कि ज्योंही मेरे गुरु यहाँ से भिक्षा के लिए

निकलेंगे त्योंही वस्त्रों का परित्याग करके मैं यहाँ से चला जाऊँगा क्योंकि चञ्चल चित्त से पूज्य वेष धारण करने वाले पाप बुद्धि का न परलोक बनेगा और न इहलोक।

अष्टम सर्ग—स्त्री एक विघ्न

नन्द की आँखे अत्यन्त चञ्चल थीं। घर जाने की उत्सुकता में वह अत्यन्त व्याकुल था अत: उसके समीप जाकर किसी भिक्षु ने उससे धैर्य धारण करने का आदेश दिया। अन्तत: उसने एक लता मण्डल में बैठकर उस भिक्षु से सभी कुछ गोपनीय निवेदन कर दिया। प्रिया वियोग में विकल नन्द को देखकर उस भिक्षु ने मन ही मन सोचा—"अहो, असंयतात्मा, तृष्णा-युक्त कृपण श्वान अपने द्वारा उगले हुए भोजन को पुन: खाना चाहता है।" ऐसा जानकर उस भिक्षु ने नन्द को भिन्न प्रकार से उपदेश दिया।

यशस्वी, कुलीन एवं बुद्धिमान के लिए वन में आकर पुन: घर लौटने का विचार करना उचित नहीं जैसे कि वायु के वेग से पर्वत का झुकना उचित नहीं। जैसे विषयुक्त लताओं का स्पर्श करने से, सर्पयुक्त गुफाओं को निवास के लिए साफ करने से और खुली तलवार को पकड़ने से विपत्ति होती है उसी प्रकार स्त्रियों के सम्पर्क का परिणाम विपत्ति है। स्त्रियों के वचन में मधु रहता है और हृदय में हालाहल नामक महा विष। वे गुणवानों के साथ स्वामी के समान और गुणहीनों के साथ पुत्र के समान आचरण करती हैं। यदि तुम्हारी वह सुन्दरी मलरूपी कीचड़ से युक्त और वस्त्र रहित हो जाय और उसके नख, दाँत व रोम स्वाभाविक अवस्था मे हो जायँ तो निश्चय ही वह आज तुम्हें सुन्दर नहीं लगेगी। इसलिए स्त्रियों मे मन एवं शरीर के इन दोनों दोषों को जानकर, संसार को मृत्यु से ग्रस्त तथा कच्चे बर्तन के समान दुर्बल देखकर अपनी अनुपम बुद्धि को मोक्ष मे लगाओ। तुम्हें घर जाने की उत्कण्ठा नहीं करनी चाहिए।

नवम सर्ग—अभिमान की निन्दा

नन्द को नाना प्रकार से उपदेश देने पर भी जब वह शान्ति प्राप्त न हुई तो उस भिक्षु ने पुन: निम्न प्रकार से उपदेश देना प्रारम्भ किया। भिक्षु ने कहा—"हे नन्द! बल, रूप एवं यौवन सभी कुछ क्षणभंगुर हैं। यह शरीर रोगों का घर है, अत: बल का अभिमान करना निरर्थक है। बल का अभिमान करने वाले सहस्रार्जुन का वह बल कहाँ है? परशुराम ने

युद्ध में उसकी भुजाओं को वैसे ही काट डाला जैसे कि वज्र पर्वत की वड़ी वड़ी चोटियों को काट डालता है। कंस का वध करने वाले कृष्ण का वह वल कहाँ है ? जरा नामक व्याध ने एक ही बाण से उसे मार डाला। नमुचि दैत्य का वह वल कहाँ है ? इन्द्र ने युद्ध में पानी के फेन से उसे मार डाला। अतः वल एवं वीर्य का अभिमान करने वाले बलवानों के बल को चूर्ण हुआ देखकर तुम्हें वल का अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि वीर वही है जो अपनी चञ्चल इन्द्रियों को वश में रखे। इसी प्रकार रूप का अभिमान भी निरर्थक है। जब तुम देखोगे कि तुम्हारे मुख की मूछ-दाढ़ी विवर्ण हो गई हैं, मुख पर झुर्रियाँ पड़ गईं हैं, दाँत टूट गये हैं, भौहें शिथिल हो गई हैं, मुख निष्प्रभ और जर्जर हो गया है तब जरा से अभिभूत होकर तुम मद-रहित हो जाओगे। जिस प्रकार सब रस निचोड़ लिये जाने पर ईख पृथ्वी पर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार जरा रूपी यंत्र में दब कर शरीर सार-रहित हो जाता है। अतः अपने आसक्त चित्त के कारण शरीर को 'मैं' और 'मेरा' ही समझने का जो तुम्हारा दूषित विचार है, इसको छोड़ो, ऐसा करने पर ही शांति होगी; क्योंकि 'मैं' और मेरा यह भाव भय उत्पन्न करता है।" उस महा विद्वान् भिक्षु के द्वारा इस प्रकार वहुत कुछ समझाने बुझाने पर भी नन्द को न धैर्य हुआ और न शांति; क्योंकि मदमत्त हाथी के समान उसका चित्त मदान्ध था।

दशम सर्ग—स्वर्ग दर्शन

नन्द की अपनी पत्नी के प्रति आस्था, गृह-प्रत्यावर्तन की उत्कण्ठा ने तथागत को नन्द के लिए स्वर्ग-दर्शन कराने पर विवश कर दिया। सुगत मायां रूपी अन्धकार में भटकते नन्द को आकाश-मार्ग से ले जाकर हिमालय पर पहुँचा। वहाँ पर अनेक प्रकार के पशु-पत्ती, मनोरम प्राकृतिक दृश्य देखकर नन्द विस्मयान्वित हुआ। गुफाओं में रहने वाली अत्यन्त सुन्दरी किन्नरियाँ उसके चारों ओर ऐसे सुशोभित हुईं जैसे फूलों से भरी हुई लतायें। तथागत मुनि ने अपने झुण्ड से भटकी हुई एक काणी वानरी को दिखाते हुए नन्द से पूछा—"हे नन्द, तुम्हारी समझ से रूप और हाव-भाव में कौन अधिक सुन्दर है यह वानरी जिसकी एक आँख नष्ट हो गई है या वह व्यक्ति जिसमें तुम्हारा मन लगा हुआ है।" नन्द ने उत्तर दिया—"हे भगवन् ! कहाँ वह उत्तम स्त्री आपकी वधू और कहाँ यह पेड़ पर रहने वाली वानरी।"

तदनन्तर नन्द ने नाना प्रकार के सुगन्धित वृक्ष, पशु, पक्षी एवं लताओं से युक्त इन्द्र के उस वन को चारों ओर देखा और अप्सरायें आनन्दित होकर अभिमान पूर्वक एक दूसरे को देखतीं हुई उसके चारों ओर आ गई। अप्सराओं के रूप एवं रङ्ग को देखकर नन्द रागान्वित होकर अपनी प्रियतमा सुन्दरी को भूल गया। इस प्रकार नन्द को राग द्वेष से रहित समझकर सुगत आकाश से उत्तर कर पृथ्वी पर पुनः आ गये।

एकादश सर्ग—स्वर्ग की निन्दा

उस समय नन्दन वन में विचरण करने वाली उन स्त्रियों को देख कर नन्द ने अपने चित्त को नियमरूपी स्तम्भ मे बांधा। यद्यपि वह काम-चर्या में निपुण तथा भिक्षु-चर्या में असमर्थ था किन्तु उत्तम आचार्य का आश्रय पाकर उसने ब्रह्मचर्य का पालन किया। नन्द को भार्या–विमुख समझकर आनन्द ने उसके समीप जाकर प्रेमपूर्वक यों कहा—"अहो, इन्द्रिय निग्रह करके तुम स्वस्थ हो गये हो। यदि तुम आनन्द चाहते हो तो अपने मन को अध्यात्ममार्ग में लगाओ। शान्त एवं निर्दोष अध्यात्म के आनन्द के समान दूसरा कोई आनन्द नहीं है। विषयों की खोज में दुःख है, उनकी प्राप्ति होने तृप्ति नहीं होती। वियोग होने पर शोक नियत है और स्वर्ग में उनका वियोग निश्चित है। स्वर्ग के कामोपभोग के समय जो सुख होता है और वहाँ से गिरते समय जो दुःख होता है अतः सुख से दुःख ही अधिक है।"

द्वादश सर्ग—विवेक

क्यों नन्द! 'अप्सराओं को प्राप्त करने के लिए धर्माचरण कर रहे हो' आनन्द के द्वारा इस प्रकार कहा जाने पर नन्द अत्यन्त लज्जित हुआ। लज्जा से उसका मन उदास हो गया। परन्तु स्वर्ग की तृष्णा के नष्ट होने पर उसका मन तुरन्त ही स्वस्थ हो गया तथा वह स्वर्ग के भोगों की अनित्यता को समझ गया। इस प्रकार उसने आनन्द मुनि से परम पद प्राप्त करने का मार्ग पूछा। आनन्द ने उत्तर दिया—"अहो, तुम्हारा विवेक तुम्हारे श्रेय का पुरोगाम है। आज तुम्हारा जन्म सफल है। चञ्चल इन्द्रिय रूपी घोड़ों द्वारा जिस सुमार्ग पर तुम चले हो, वह सौभाग्य से अब सन्मार्ग बन चुका है। विप-पान करके, समय पर जिस विष–नाशक औषधि को पीना चाहते हो वह सर्व दुःख विनाशक अमृत तुम्हारे पास है। जब तक मनुष्य

तत्व ज्ञान को देख या सुन नहीं लेता है तब तक उसकी श्रद्धा बलवती या स्थिर नहीं होती है। संयम के द्वारा इन्द्रियों को जीतकर तत्वज्ञानी की श्रद्धा रूपी वृक्ष फल और आश्रय देता है।"

त्रयोदश सर्ग—शील और इन्द्रिय संयम

बुद्ध से दीक्षित होने के अनन्तर नन्द ने अमृतानन्द का पान करते हुए केवल जीवों को दुःखसे छुड़ाने के निमित्त ही अपने शरीर धारण किया। तदनन्तर बुद्ध ने नन्द को शील (आचार) की रक्षा करने तथा मोक्ष पर्यन्त दुःख से छुटकारा पाने के लिए प्रयत्न करने का उपदेश दिया। सदाचार से युक्त होकर ब्रह्मचर्य का व्रत धारण करना चाहिए। मोक्ष का राजमार्ग वैराग्य ही है—ऐसा समझना चाहिए। शारीरिक एवं मानसिक सुख की उपनिषद् परम शान्ति और शान्ति की उपनिषद् (रहस्य) प्रीति जानना चाहिए। प्रीति का उपनिषद् परम आनन्द है और परम आनन्द शील से प्राप्त होता है। बुद्ध ने नन्द को उपदेश देते हुए आगे यह भी बतलाया कि शत्रु आदि से मारा जाकर मनुष्य नरक नहीं जाता किन्तु चपल इन्द्रियों से मारा जाकर बेचारा यहाँ घसीट कर ले जाया जाता है। अतः इन्द्रियों का निग्रह करके मनुष्य को विषयों से दूर रहना चाहिए क्योंकि विषयों से इन्द्रिय समूह की तृप्ति नहीं होती। विषय की अयथार्थ कल्पना से मनुष्य बाँधा जाता है और उसी विषय को ठीक ठीक देखता हुआ मुक्त होता है।

चतुर्दश सर्ग—आदि प्रस्थान (प्रयाण)

आदि प्रस्थान से तात्पर्य इंद्रियों को जीतने के लिए विजय यात्रा से है। इस सर्ग में बुद्ध द्वारा दिये गये उपदेश का ही संग्रह है। इन्द्रिय-संयम के लिए भोजन न तो अधिक मात्रा में ही करना चाहिये और न अत्यल्प ही। भोजन बिल्कुल छोड़ देना भी प्रशंसनीय नहीं। योगाभ्यासी मनुष्य शरीर को केवल भूख मिटाने के लिए ही आहार देता है। संयतात्मा व्यक्ति रात्रि एवं दिन दोनों ही में योगाभ्यास करता है क्योंकि योगाभ्यास से निद्रा का नाश एवं संज्ञा का प्रादुर्भाव होता है। स्मृति से युक्त व्यक्ति सदैव न्याय (सत्य) से युक्त रहता है। सुख दुःख आदि द्वन्द्वों में आनन्द पाने वाले एवं विषयों से व्यग्र जगत में शोक पाते हैं तथा इनसे रहित पवित्रात्मा शान्त हृदय होकर एकान्त में विहार करता है तथा देवेन्द्र के राज्य से भी उत्तम सुख का भोग करता है।

पञ्चदश सर्ग–वितर्क प्रहाण

वितर्क प्रहाण का अर्थ मानसिक शुद्धि है। योगासन के लिए किसी एकान्त स्थान में उत्तम आसन बाँध कर शरीर को सीधा कर, स्मृति को सन्मुख रख कर चित्त को एकाग्र करो। धन के लिये तृष्णा, स्वर्ग प्राप्ति की अभिलाषा एवं काम-सुख की आशा मनुष्य को नष्ट करती है। अत: द्रोह एवं हिंसा का परित्याग करके वितर्क का निवारण करना मोक्ष के लिए श्रेयस्कर है। संसार की विचित्रताओं में आसक्ति ही छंद-राग है अत: छंद-राग से निवृत्ति हो जाने पर जीवन आलोकमय बन जाता है। जिस प्रकार सुनार अनेक प्रकार से प्रस्तुत तथा आसानी से काम करने योग्य सोने को स्वेच्छानुसार भाँति भाँति के अलंकारों में परिणत कर देता है उसी प्रकार जिस भिक्षु ने मन को शुद्ध कर लिया है, वह जैसे चाहता है और जहाँ चाहता है, अपने मन को वैसे ही शांत कर लेता है और इच्छानुसार प्रेरित करता रहता है।

षोडश सर्ग–आर्य सत्यों की व्याख्या

इस प्रकार मानसिक एकाग्रता द्वारा क्रम से कुछ छोड़ कर और कुछ ग्रहण करके योगी चार ध्यानों को प्राप्त करके निश्चय ही इन पाँच अभिज्ञाओं को प्राप्त करता है:—(१) अनेक प्रकार की उत्तम ऋद्धियाँ (२) दूसरे के चित्त की गति का ज्ञान (३) अनेक अतीत जन्मों की स्मृति (४) दिव्य एवं विशुद्ध श्रोत्र तथा (५) दृष्टि। इसके बाद तत्व की परीक्षा द्वारा वह अपने मन को आस्रवों (चित्त-मलों) के विनाश में लगाता है क्योंकि तब वह दुःख आदि चार सत्यों को ज्ञान से जान लेता है।

"बाधात्मकं दुःखमिदं प्रसक्तं,
दुःखस्य हेतुः प्रभवात्मकोऽयम्।
दुःखक्षयो निःसरणात्मकोऽयं,
त्राणात्मकोऽयं प्रशमाय मार्गः॥"

यह दुःख निरन्तर है अत: इसका स्वरूप पीड़ा है। यह दुःख कि कारण है इसकी आत्मा में उत्पत्ति; आत्मा में ही दुःख का क्षय है इसकी नाम है निःसरण; यह शांति का मार्ग है; इसकी आत्मा है त्राण(रक्षा)। बीज का जो स्वभाव है वही रहेगा, अग्नि प्रत्यक्ष में जैसी गर्म है वैसी ही रहेगी, अत: जानना चाहिए कि दोषों से ही संसार की उत्पत्ति होती है।

कारण का नाश होने से दुःख का नाश होता है। शांत एवं मङ्गलमय धर्म का साक्षात्कार करो जो तृष्णा-विनाशक, अविनाशी और पवित्र है। भूमि को जोतकर मनुष्य उत्तम सस्य प्राप्त करता है अतः शान्ति प्राप्त करने के लिए उद्योग करो क्योंकि उद्योग में ही सब समृद्धियों का निवास है।

सप्तदश सर्ग—अमृत की प्राप्ति

जब नन्द तत्वमार्ग के उपदेश को ग्रहण कर चुका तो मोक्ष के मार्ग को जानते हुए, जंगल में नदी के किनारे पर्यङ्क आसन बाँधकर बैठ गया। ज्ञान एवं शान्ति के द्वारा चित्त की कर्मभूमि में विचरण करने लगा। पुनः पुनः काम-वासना एवं वितर्कों से संघर्ष लेता हुआ वह योगाभ्यास में रम गया। तब मुक्ति मार्ग में लगे हुए उस संयतात्मा ने संभार, प्रत्यय (कारण), स्वभाव, आस्वाद और दोष विशेष की दृष्टि से धर्मों (पदार्थों) की विधिवत परीक्षा की। उसने रूपवान् और अरूपवान् सम्पूर्ण सार देखने की इच्छा से शरीर का विश्लेषण किया और इसको अपवित्र, दुखमय, अनित्य और शून्य समझा। बार बार जन्म-मरण रूप इस संसार को दुःखमय देखा। सच्चा ज्ञान रूपी धनुष लेकर, स्मृतिरूपी कवच पहन कर और विशुद्ध शीलव्रतरूपी वाहन पर चढ़कर वह चित्त के रणाङ्गण में स्थित क्लेश रूपी शत्रुओं के साथ युद्ध करने की इच्छा से विजय प्राप्त करने के लिए खड़ा हुआ। इस प्रकार—

> इति त्रिवेगं त्रिझषं त्रिवीचमेकाम्भसं पञ्चरयं द्विकूलम्।
> द्विग्राहमष्टाङ्गवता प्लवेन दुःखार्णवं दुस्तरमुत्ततार ॥"

अष्टादश सर्ग—आज्ञा व्याकरण

अन्त में नन्द कृतार्थ होकर गुरु के समीप पहुँचा और 'आपने जो मेरे लिए परिश्रम किया वह सफल हुआ' ऐसा सोचकर उसने मुनि का दर्शन करना चाहा और गुरु से बोला—'हे मुनिराज, आस्वाद के वशीभूत होकर मैंने मद से जिस काम रूपी विष को पिया था वह आपके वचन रूपी औषध के द्वारा नष्ट हो गया। हे कृतकार्य! मैंने सारा कार्य कर लिया। यद्यपि मैं लोक (संसार) में हूँ तो भी लोक धर्म से लिप्त नहीं हूँ। अतः मैं मुक्त हूँ।" गुरु ने संतुष्ट होकर कहा—"हे सौम्य आज तुम संसार के इस आवागमन से विमुक्त हो, आज तुम्हारी बुद्धि उत्कृष्ट है, जिसके द्वारा तुमने अपना सारा कार्य कर लिया। इसलिए हे स्थिरात्मन्! अपना

कार्य छोड़कर दूसरों का भी कार्य करो। रात्रि काल में भटकते हुए तमोवृत जीवों के बीच इस ज्ञान प्रदीप को धारण करो।" अंततः कवि का कथन काव्योद्देश्य को इंगित कर रहा है कि यह कृति शान्ति प्रदान करने के लिए है न कि आनन्द देने के लिये:—

"इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः।"

शारिपुत्र प्रकरण

अश्वघोष की तृतीय कृति "शारिपुत्र प्रकरण" है जिसका पूरा नाम "शारद्वती पुत्र प्रकरण" है। अत्यन्त प्राचीन समय में तालपत्र पर अङ्कित इसके कतिपय अवशेष लुडर्स द्वारा १६११ ई० में मध्य एशिया के तुरफान नामक स्थान से खोज निकाले गये हैं। इसी के साथ अन्य दो नाटकों के अवशेष भी मिलते हैं जिनमें एक रूपक नाटक (Allegorical Play) है तथा द्वितीय में सोमदत्त नामक नायक की प्रेम-कथा वर्णित है।

शारिपुत्र प्रकरण में उन घटनाओं का वर्णन है जिनके परिणामस्वरूप मौदगल्यायन और शारिपुत्र बुद्ध द्वारा बौद्ध बनाये जाते हैं। अश्वजित से मिलने के बाद शारिपुत्र, अपने मित्र विदूषक से बुद्ध के उपदेशक होने के अधिकार के बारे में बहस करता है। विदूषक कहता है कि शारिपुत्र सरीखे ब्राह्मण को क्षत्रिय का उपदेश ग्रहण नही करना चाहिये। किन्तु जिस तरह जल से ताप शान्त होता है उसी तरह नीच जाति के भी वैद्य द्वारा दी गई दवा बीमारी के लिये हितकर ही होती है।' यह कह कर शारिपुत्र अपने मित्र की बात काट देता है। मौदगल्यायन शारिपुत्र से मिलता है और उससे उसकी प्रसन्नता का कारण जानता है। दोनों बुद्ध के पास जाते हैं। वे उनका सत्कार करते हैं और उनसे भावी ज्ञानादि के बारे में भविष्यवाणी करते हैं। दोनों शिष्यों की प्रशंसा कर बुद्ध भरत वाक्य का उच्चारण करते हैं।

रूपक के दस भेदों में से एक प्रकरण भी है। शारिपुत्र प्रकरण अधिकांश बातों में नाट्य शास्त्र के और कुछ बातों में लोक व्यवहार के अनुकूल है। इस प्रकरण मे नौ (६) अङ्क हैं, नायक धीर एवं प्रशांत विप्र है। नायिका कुलजा स्त्री है या वेश्या—पता नहीं; कवि कल्पना द्वारा घटना में परिवर्तन किया गया है। ये सभी बातें शास्त्र सम्मत हैं। अङ्कों के नाम नहीं हैं। भरत वाक्य के पहिले 'किमतः परमपि प्रियमस्ति' यह वाक्य नहीं है तथा नायक के मुख से भरतवाक्य का उच्चारण नहीं हुआ—ये बातें व्यवहार सम्मत हैं। सर्वज्ञ बुद्ध के रहते हुए किसी और के मुख से भरत वाक्य का उच्चारण उचित नहीं होता। अन्तिम अङ्क में विदूषक का सर्वथा न होना प्रकरणकार

की सुरुचि का परिचायक है, क्योंकि बुद्ध के उपदेश ग्रहण कर लेने के पश्चात शारिपुत्र को विदूषक जैसे मनोरञ्जक पात्र की आवश्यकता नहीं। दोनों नायक, बुद्ध और उनके शिष्य संस्कृत गद्य पद्य में बोलते हैं। इन शिष्यों में कौडिन्य और एक श्रमणक भी है। विदूषक प्राकृत में बोलता है।

जिस ग्रंथ में शारिपुत्र प्रकरण है उसी में दो और रूपकों के अवशेष हैं, यह परिकल्पना की जाती है कि इनका भी प्रणेता अश्वघोष ही होगा। यह नाटक विशेष प्रकार का है। बुद्धि, कीर्ति एवं धृति इसके पात्र हैं। ये रंगमञ्च पर आकर बातचीत करती है और पीछे बुद्ध भी पधारते हैं। सभी पात्र संस्कृत भाषी हैं। ऐसा नाटक दशवीं शताब्दी तक और दूसरा नहीं मिलता। दूसरे नाटक की तरह तीसरे का भी पता नहीं है। इसके पात्रों में मगधवती नाम की एक वेश्या, कौमुदगंध नामक एक विदूषक सम्भवत: सोमदत्त नामक नायक, दुष्ट धनञ्जय नामक राजकुमार एक दासी, शारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन हैं। इसका भी अवशेष अति अल्प है अत: इसके बारे में अधिक नहीं कहा जा सकता।

विविध सूत्रानुगत ग्रंथ:—

सूत्रालंकार:—इसके मूल का संस्कृत आज उपलब्ध नहीं है। ४०५ ई० में कुमारजीव ने इसका चीनी अनुवाद किया था। यह ग्रंथ तत्कालीन पाली जातकों से ली गई सुन्दर कथाओं का संग्रह है और बौद्ध धर्म के प्रचार का साधन है। इत्सिंग ने भी सातवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखे गये अपने यात्रा का वर्णन में अश्वघोष प्रणीत सूत्रालंकार का वर्णन किया है। आगे चलकर न मालूम इस ग्रंथ का मूल कब लोप हो गया। हूबर ने इसके चीनी भाषान्तर का फ्रेंच अनुवाद (पेरिस १९०८) किया हैं।

मध्य एशिया में ल्युडर्स द्वारा प्राप्त कुमारलात की खण्डित **"कल्पना मण्डितिका दृष्टांत पंक्ति"** १९२६ ई० में प्रकाशित हुई। तबसे उस पुस्तक और सूत्रालंकार के प्रणेतृत्व और तादात्म्य के बारें में भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित हुए हैं। मतान्तरों का प्रधान कारण है इन दोनों ग्रंथों की कथाओं का एक सा होना।

महायान श्रद्धोत्पाद:—यह महायान सम्प्रदाय का एक दार्शनिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ केवल दो चीनी संस्करणों में उपलब्ध है। इस ग्रंथ का

प्रणेतृत्व विवादास्पद है। हुएन्तसांग की जीवनी में इसका प्रणेता प्रसिद्ध अश्वघोष बताया गया है। किसी का कहना है कि कवि अश्वघोष दार्शनिक अश्वघोष से भिन्न है अथवा यह किसी तीसरे का ही बनाया हुआ है और अश्वघोष की प्रसिद्धि के कारण ही इसका प्रणेतृत्व उस पर आरोपित किया गया है। कुछ जापानी विद्वानों के अनुसार यह संस्कृत ग्रंथ नहीं किन्तु चीनी ग्रंथ है। जापान के स्कूलों और मठों में इसका खूब प्रचार है।

वज्र सूची:—यह पुस्तक वज्र की सुई की नोक के समान वर्ण व्यवस्था के समर्थकों को चुभती है। इसमें श्रुति, स्मृति और महाभारत के उद्धरणों से ही वर्ण व्यवस्था की कठोर आलोचना की गई है। "दु:ख-सुख, जीवन-प्रज्ञा, व्यवसाय-व्यापार, जन्म-मरण, भय-काम में सब श्रेणी के लोग बराबर हैं।" इस तरह इस पुस्तक में सभी मानव प्राणियों की जो समानता प्रतिपादित की गई है, इससे इस पुस्तक के यूरोपीय अनुवादक और सम्पादक मुग्ध हैं। इसके चीनी अनुवादक के अनुसार मूल ग्रंथ के लेखक धर्म कीर्ति हैं।

गण्डी स्तोत्र गाथा:—यह एक सुन्दर गेय कविता है, इसमें बुद्ध एवं संघ की स्तुति है। एक योरुपीय विद्वान् ने इसकी चीनी प्रतिलिपि के आधार पर फिर इसे मूल संस्कृत मे लिखा है।

राष्ट्रपाल:—स्वर्गीय सिलवॉ लेवी के अनुसार अश्वघोष, सम्भवत: एक गेय नाटक का भी लेखक है। इसमें राष्ट्रपाल की कथा वर्णित है।

"कवीन्द्र वचन समुच्चय" की भूमिका में टॉमस महोदय ने अश्वघोष के निम्नलिखित ग्रंथों का विवरण दिया है।

१—बुद्धचरित
२—शारिपुत्र प्रकरण
३—सौन्दरनन्द
४—गण्डी स्तोत्र गाथा
५—वज्र सूची

परन्तु इत्सिंग के अनुसार अश्वघोष के नाम से शुद्ध बौद्ध दार्शनिक ग्रंथों में (१) महायान श्रद्धोत्पाद संग्रह (२) वज्रसूची (२) गण्डी स्तोत्र गाथा (४) सूत्रालंकार यही ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। प्रथम का आँग्ल अनुवाद प्रो० सुजुकी ने किया और इनके अनुसार अश्वघोष ही इसके रचयिता हैं। दूसरा ग्रंथ

'वज्र-सूची' है। इसमें ब्राह्मण धर्म द्वारा मान्य वर्ण व्यवस्था की छीछालेदर की गई है जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है। चीनी परम्परा ने इसे अश्वघोष कृत नहीं माना। वस्तुत: यह धर्मकीर्ति कृत है। गण्डी स्तोत्र गाथा में केवल २६ छंदों की रचना है। 'सूत्रालंकार' के विषय में भी इसे अश्वघोष की कृति न मानना चाहिए यही अधिक विद्वानों का मत है। प्रो० ल्युडर्स इसे कुमारलात की रचना मानते हैं। नेञ्जों के बौद्ध त्रिपिटिक के चीनी अनुवाद में अश्वघोष के ८ ग्रंथों का तथा डा० राघवन् ने "विविधसूत्रानुगतसूत्रों" से संकलित इनके १६ ग्रंथ गिनाये हैं।

वस्तुत: उपर्युक्त समस्त ग्रंथों का कर्तृत्व अश्वघोष को समर्पित करना कठिन है। अश्वघोष के नाम से इन सबके सम्बन्ध का कारण उनका बौद्ध धर्म में पाण्डित्य, उनकी विलक्षण प्रतिभा तथा उनकी महा कवित्व शक्ति है जिससे सभी रचनायें अश्वघोष के नाम से सम्बद्ध होकर ख्याति पाने लगीं।

अश्वघोष की दार्शनिकता

अश्वघोष में कवित्व और दार्शनिकत्व दोनों का समवेत स्वरूप मुखरित होता है। अश्वघोष ने अपने काव्यों द्वारा जीवन दर्शन को बौद्ध दर्शन की पीठिका पर अवस्थापित किया है। इसके साथ ही भारतीय दर्शन की सांख्य योग की सरणि तथा बौद्ध दर्शन में पर्याप्त साम्य प्रतीत होता है क्योंकि अश्वघोष ने सांख्य का विस्तार से वर्णन किया है।

अश्वघोष के काव्यों में वैदिक परिज्ञानात्मक स्थलों के साथ ही औपनिषदिक ज्ञान का भी परिस्फुरण मिलता है। जो न केवल अश्वघोष की कृतियों में अपितु बौद्ध दर्शन के विकास के मूल में समाहित है। यद्यपि बौद्ध दर्शन ने आर्य सत्य चतुष्टय की सिद्धांत सरणि पर 'बहुजन हिताय' नवीन धर्म की स्थापना की तथापि त्याग, ज्ञानादि तथा वैराग्य का जो निरूपण बौद्ध दर्शन में हुआ वह उपनिषद् काल में ही स्थिर हो चुका था। बृहदारण्यकोपनिषद् का यह कथन कि:—

"ब्राह्मणा: पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं चरन्ति।" इति,

अश्वघोष के द्वारा बुद्धचरित में 'आर्य मार्ग' कह कर सम्बोधित किया गया है। 'आर्येण मार्गेण तु यास्यतीति।' बु० १/१६। अश्वघोष ने उपनिषद् दर्शन से प्रादुर्भूत सांख्य योग दर्शनों का दोनों काव्यों में समुचित प्रतिपादन किया है। श्वेताश्वतरोपनिषद् में जगत, काल, स्वभाव, नियति

एवं सुख-दुःख की मीमांसा "कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा" इत्यादि शब्दों से की गई है। अश्वघोष ने सौन्दरनन्द में इन्हीं वाक्यों की पुनरावृत्ति कर दी है:—

"प्रवृत्ति दुःखस्य च तस्य लोके,
तृष्णादयो दोषगुणाः निमित्तम्।
नैवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो,
नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा॥"
(सौ० १६।१७)

प्रो० कर्न के अनुसार "आर्य-सत्य-चतुष्ट्य" तथा "प्रतीत्यसमुत्पाद" को लेकर जहाँ एक ओर बौद्ध-दर्शन आयुर्वेद और योग के समीपहैं वहीं प्रतीत्य-समुत्पाद तथा सांख्य के प्रत्यय सर्ग में भी अत्यधिक अनुरूपता है। जैकोबी ने सर्व प्रथम प्रतीत्यसमुत्पाद को लेकर सांख्य का बौद्ध दर्शन पर प्रभाव स्वीकार किया। ओल्डनवर्ग तथा टॉमस ने इसे नहीं माना। सांख्य तथा बौद्ध दर्शन दोनों में सुख-दुःख विवेचन की समान प्रक्रिया है अतः दोनों का साम्य स्वतः सिद्ध है।

इसके उपरांत महाभारत के मोक्ष धर्म और भगवद्गीता के सांख्य का विवेचन प्राप्त है। भगवद्गीता ने अश्वघोष के दार्शनिक स्वरूप को प्रभावित किया है। ऐसा जान्स्टन और लाहा दोनों विद्वान् स्वीकार करते हैं। बुद्धचरित मे अश्वघोष ने 'पञ्चपर्वा अविद्या' की चर्चा की है जो योगाचार्य व्यास का सूत्र कहा जाता है।

अश्वघोष ने अराड के द्वारा बुद्ध को सांख्य का उपदेश दिलाया है परन्तु वे कपिल का स्मरण करते हैं। कपिल सांख्य के संस्थापक थे बुद्ध-चरित में देखिए:—

"स शिष्यः कपिलश्चेह प्रतिबुद्ध इति स्मृतः।
सपुत्रः प्रतिबुद्धस्तु प्रजापतिरिहोच्यते॥"

परन्तु अश्वघोष द्वारा वर्णित सांख्य और सांख्यकारिका के सांख्य में महान् अन्तर है। सांख्यकारिका में "मूल प्रकृतिरविकृतिः" माना है। जब कि अश्वघोष ने मुख्य तत्व सत्व को माना है। प्रकृति, विकार, जन्म, जरा और मृत्यु को इसके अन्तर्गत माना है। बौद्ध दर्शन और योग में पर्याप्त साम्य है न केवल समान शब्दों का अपितु विचारों का भी। ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में योगी किस प्रकार आचरण करें—यह सौन्दरनन्द में देखिए:—

"नासाग्रे वा ललाटे वा भ्रुवोरन्तर एव वा।
कुर्वीथाश्चपल चित्तमालम्बन परायणम्॥"
(१५।२)

चित्त के एकाग्र हो जाने पर योगी चार आर्य सत्यों का ज्ञान करता है जो कि सौन्दरनन्द में १६।४ में अश्वघोष ने बताये हैं।

बाधात्मक दुःखमिदं प्रसक्तं दुःखस्य हेतुः प्रभवात्मकोऽयम्।
दुःखक्षयोनि सरणात्मकोऽय त्राणात्मकोऽय प्रशमाय मार्गः॥

इस स्थिति में पहुँच कर साधक जन्म चक्र से मुक्त हो जाता है। अश्वघोष ने बुद्धचरित के बारहवें सर्ग मे योगी की इन क्रियाओं का वर्णन किया है। अर्हत्व प्राप्ति का साधन सौन्दरनन्द में बुद्ध द्वारा नन्द को दिये गये उपदेश में पूर्णतया दिखाई पड़ता है।

बौद्ध दर्शन की वह अन्य विशेषता जिसका पालन अश्वघोष ने किया शुद्ध आचार तथा नैतिक आदर्शवाद की स्थापना है। डा० जान्स्टन अश्वघोष को हीनयान शाखा का अनुयायी मानते हुए भी उन्हें बहुश्रुतिक और कौकूलिक ? मानते हैं। डा० बेनीमाधव बरुआ उन्हें सौत्रान्तिक मानते थे। श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने उन्हें योगाचार का अनुयायी माना है। विधुशेखर भट्टाचार्य उन्हें माध्यमिक सिद्ध करते हैं परन्तु अश्वघोष हीनयानी थे इसे सभी भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् स्वीकार करते हैं क्योंकि उन्होंने अपने काव्यों में उन आदर्शों की स्थापना की जिससे उन्हें हीनमतानुगायी कहा जा सकता है। उनके साहित्य से उन्हें थेरवाद से संसक्त सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय का माना जाय तो असंगत न होगा। डा० विमला चरण लाहा तथा चीनी परम्परा इसका अनुमोदन करती है। इसके अतिरिक्त बहुश्रुतिक, कौकुलिक; महासंघीय होने का भी समाहार सर्वास्तिवाद मे हो जाता है।

बौद्ध दर्शन दुःखवाद के लिए प्रसिद्ध है। बौद्ध दार्शनिक जन्म एवं जीवन को दुःख से समवेत मानता है। सौन्दरनन्द के १६वें सर्ग में इस दुःखवाद के सिद्धान्त को लौकिक दृष्टान्तों से समझाया गया है। चित्त के साथ दुःख व शरीर का वही सम्बन्ध है जो पवनादि या आकाशादि के साथ। जब तक शरीर व चित्त है मानव दुःख पाता ही रहेगा। जिस प्रकार पानी का स्वभाव द्रवत्व है, अग्नि का उष्णत्व, उसी प्रकार चित्त एवं शरीर का स्वाभाविक धर्म दुःख है। देखिए:—

आकाशयोनिः पवनो यथा हि,
यथा शमीगर्भशयो हुताशः।

आपो यथान्तर्वमुध मिलन्ति,
दु:ख तथा चित्त शरीरयोनि: ।।"

इस दुखात्मक संसार से छुटकारा पाना ही मोक्ष या निर्वाण है। नैयायिकों को मोक्ष दशा शिलात्वमुक्ति सी है, पर बौद्धों के निर्वाण की स्थिति मे 'आत्मा न पृथ्वी में जाती है, न अन्तरिक्ष में, न दिशा में, न किसी विदिशा में। किन्तु क्लेशक्षय से ठीक उसी तरह शात हो जाती है जैसे दीपक निवृति की दशा में।

दीपो यथा निवृत्तिमभ्युपेतो,
नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश नकाञ्चिद् विदिश न काञ्चिद्,
स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ।।

बौद्ध दार्शनिक आत्मा को चेतना का प्रवाह रूप मानते हैं तथा अन्य पदार्थों की भांति वह भी क्षणिकवाद के सिद्धान्त से आवद्ध है। इसी को दीप-कलिदा न्याय से स्वष्ट करते हैं यथा दीपक की लौ प्रतिक्षण परिवर्तन शील है किन्तु प्रतिक्षण परिवर्तित रूप तत्सदृश बना रहने से हमें ताद्रूप्य की भ्रांति कराता है। नदी प्रवाह न्याय भी इसी प्रकार का है। 'प्रतिक्षणं परिणामिन: मर्वे भावा:' एवं "यत्सत् तत् क्षणिकम्' ये बौद्धों के सिद्धान्त हैं। जीवन आत्मा की प्रवाहमयता है 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं"ही दु:ख या क्लेश है।

निर्वाण का इच्छुक दार्शनिक संसार को काम (मार) का राज्य समझता है अतएव बुद्धचरित के ७, ८, ९ सर्गों में काम-निन्दा की गई है। सौन्दरनन्द के ८वें सर्ग में नन्द की दशा विचारणीय है।

"कृपणं वत यूथलालसो,
महतो व्याधभयाद्विनि:सृत: ।
प्रविविक्षति वागुरांमृग-
श्चपलो गीतरवेण वञ्चित: ।।"

"महान् दु:ख की बात है कि महान् व्याध के भय से छुटकारा पाया हुआ चञ्चल मृग झुण्ड की लालसा से युक्त होकर तथा गीत ध्वनि से वञ्चित होकर फिर से जाल में फँसना चाहता है।" अंत मे हम यही कह सकते हैं कि अश्वघोष के दर्शन की समाप्ति परम शान्ति के मार्ग पर चलने से ही हो जाती है। बुद्धचरित को कवि परम शान्ति के मन्दिर तक कहता

है कभी कभी रमणीय और अधिकतर शुष्क प्रदे
जबकि सौन्दरनन्द का कवि एक ऐसे सरल मार्ग
दोनों ओर चाहे सुरभित पादपावलियाँ न हो फि
स्वत: पथिक के पैरों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्स

अश्वघोष—एक कवि

साहित्य के क्षेत्र में एक सफल कवि के लिए किन किन बातों की अपेक्षा होती है, यह तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति एवं उस कवि की कवित्व शक्ति पर निर्भर करता है। अश्वघोष को कवि की दृष्टि से देखने के लिए निम्न बातें आवश्यक है :—

(१) अश्वघोष को प्रभावित करने वाले कवि एवं काव्य
(२) अश्वघोष के कतिपय कठिन और ऐतिहासिक संकेत
(३) अश्वघोष की कवित्व शक्ति
(४) अश्वघोष की लोकानुभूति
(५) अश्वघोष का शास्त्रीय ज्ञान

इन उपर्युक्त बातों का उल्लेख हम अगले पृष्ठों में क्रमश: सविस्तर करेंगे। यहाँ पर केवल यह जान लेना ही आवश्यक है कि काव्य के क्षेत्र में अश्वघोष की मान्यता कालिदास, भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष की भाँति नहीं है क्योंकि जहाँ पर कालिदास के काव्यों पर दृष्टिपात की जाती है वहाँ वे एक शुद्ध रस-वादी कवि दृष्टिगोचर होते हैं, भारवि ने चमत्कार-वाद को जन्म देकर माघ एवं श्रीहर्ष को कलावादी (अलंकारवादी) बनने के लिए मजबूर किया। इन सबसे भिन्न अश्वघोष का कलात्मक दृष्टिकोण निश्चितरूपेण उपदेशवादी या प्रचारवादी है क्योंकि वे काव्यानन्द रस को काव्य का साधन मानते हैं जबकि कालिदास उसे साध्य मानते हैं तभी तो अश्वघोष ने काव्य-रचना के लक्ष्य को शान्ति माना। 'इत्येषा व्युप-शान्तये' वाले कथन से स्पष्टत: यही बात परिलक्षित होती है। बौद्धधर्म के प्रचारार्थ ही उन्हें काव्य का आश्रय लेना पड़ा था यह स्मरणीय रहना चाहिए।

अश्वघोष को प्रभावित करने वाले कवि एवं काव्य

कवि अपनी उद्भावनाओं के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में पूर्ववर्ती साहित्य का ऋणी होता है क्योंकि स्वत: उद्भूत विचार भी पूर्वस्थ विचारधारा के पोषण अथवा उसके विपक्ष में व्यक्त होते हैं। उन्होंने

संकेत तथा शैली के लिए उपलब्ध साहित्य से सहायता ली। बौद्ध सिद्धान्तों के विचार वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराण, नीति-शास्त्र तथा पालि साहित्य के ग्रंथों के संकेत तथा उन्हीं काव्यों ने अश्वघोष की काव्य-शैली को प्रभावित किया।

कावेल ने बुद्धचरित की भूमिका मे बुद्धचरित तथा रामायण के कतिपय सामान्य स्थलों की चर्चा की है। गारोन्सकी ने यह सिद्ध किया है कि अश्वघोष रामायण के उस स्वरूप से परिचित थे जो आज उपलब्ध है। उन्होंने बुद्धचरित तथा रामायण के अयोध्याकाण्ड का तुलनात्मक अध्ययन किया। तदनन्तर गर्नर ने 'अश्वघोष तथा रामायण' नामक लेख मे अश्वघोष पर रामायण का प्रभाव स्वीकार किया है। इतना ही नहीं स्वयं अश्वघोष ने बुद्धचरित के प्रथम सर्ग के २६वें श्लोक में 'वाल्मीकिरिव धीमाँश्च धीमतोर्मैथिलेययोः' लिखकर वाल्मीकि को आदिकवि और धीमान् माना है। रामायण के अतिरिक्त महाभारत का भी अश्वघोष के काव्यों पर स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। तभी तो अश्वघोष ने व्यास को भी सौन्दरनन्द में 'द्वैपायनो वेद विभागकर्ता' और 'द्वैपायनो धर्मपरायणश्च' कहकर श्रद्धा व्यक्त की है।

वाल्मीकि तथा व्यास का स्मरण करते हुए कवि ने रामायण तथा महाभारत की कथा, उनके पात्रों तथा वंशों का उल्लेख अपने दोनों काव्यों में किया है। बुद्धचरित में छंदक सारथि सिद्धार्थ से कहता है:—

"नास्मि यातुं पुरं शक्तो दह्यमानेन चेतसा।
त्वामरण्ये परित्यज्य सुमन्त्र इव राघवम्।"

इसी प्रकार कपिलवस्तु प्रत्यावर्तन पर जनता का अश्रु प्रवाहित करना, नृपति शुद्धोदन का दशरथ की तरह विलाप करना, शुद्धोदन का रामशोकाभिभूत दशरथ के समान अचेत होना, वशिष्ठ एवं वामदेव के सदृश दो पुरोहितों का कुमार के अन्वेषणार्थ वन जाना आदि स्थलों में रामायण के कथानक से सादृश्य पाया जाता है। इसी प्रकार महाभारत से भी अश्वघोष के काव्यों में संकेत लिए गए हैं। बुद्ध भगवान् को पाण्डव के सदृश कहा गया है जो कि बुद्धचरित के दशम सर्ग में उपलब्ध निम्न पंक्ति से स्पष्ट है:—

"स पाण्डवं पाण्डवतुल्यवीर्यः।" १०।१७

कौशल्या का यह विलाप:—

स्थिरं हि नून हृदयं ममायसं।
न म्रियते यदि भुवि नविदीर्यते॥" तथा

यशोधरा का यह विलाप कि:—

> "ममापि कामं हृदयं सुदारुणं,
> शिलामयं वाप्ययसोऽपि वा कृतम् ।"

भाव, छंद तथा भाषा की दृष्टि से साम्य रखता है। इसी प्रकार बुद्धचरित का राजमार्ग वर्णन तथा 'दशरथ इव रामशोकवश्यो, बहु विललाप नृपो विसंज्ञकल्पः' आदि स्थल रामायण से स्पष्टतः प्रभावित हैं।

अश्वघोष ने प्रकृतिवर्णन पद्धति का ग्रहण वाल्मीकि से किया है। वन, पर्वत, वृक्ष, लता, पशु-पक्षी के वर्णनों में साम्य है। सौन्दरनन्द के दशम सर्ग का पर्वत तथा नन्दन वन का वर्णन वाल्मीकि के प्रसिद्ध गिरि तथा उपवनों के वर्णन से मिलता है।

अश्वघोष तथा रामायण महाभारत में शाब्दिक साम्य भी पाया जाता है। पौरजानपद, जाम्बूनद, स्फटिक, विसंज्ञकल्प, आदि शब्दों का समानरूप से प्रयोग सौन्दरनन्द, बुद्धचरित तथा रामायण में हुआ है। रामायण तथा अश्वघोष में वैडूर्य शब्द का अत्यधिक प्रयोग है।

काव्यत्व की दृष्टि से उपमान ग्रहण में वाल्मीकि तथा अश्वघोष दोनों कुशल कलाकार हैं। दोनों कवियों ने सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, रात्रि, पर्वत, लता, कमल, वृक्ष, गज तथा नदी की उपमाएँ भी दी हैं।

अश्वघोष के काव्यों में रामायण, महाभारत का एक अन्य व्यापक प्रभाव उन संकेतों का है जो कवि द्वारा उन दोनों से गृहीत हैं। इन्द्र, अहिल्या, विश्वामित्र, ऋष्यशृंग, जनक, सगर, वशिष्ठ, वामदेव, मांधाता आदि नामों के संकेत रामायण से प्राप्त होते हैं। महाभारत की भी अनेक कथाओं का उपयोग अश्वघोष ने किया है। अगस्त्य, उग्रायुध, दीर्घतमस्, गौतम कक्षीवान्, गौतम, कपिल गौतम, पाराशर, ममता, बृहस्पति, शान्तनु, भीष्म, सारस्वत, ययाति, रन्तिदेव, पाण्डु, माद्री आदि संकेतों के लिए अश्वघोष महाभारत से अनुप्राणित हैं।

अश्वघोष का काव्य सौन्दर्य

अश्वघोष के कवि स्वरूप का विश्लेषण करने के लिए कवि की उस आदि शक्ति का विश्लेषण करना आवश्यक है जिसके द्वारा काव्य का जन्म होता है। यही शक्तिप्रतिभा अथवा कल्पना के नाम से भी अभिहित होती है। कीर्ति, धृति, बुद्धि धर्म आदि भावमयी शक्तियों को नाटक के पात्र रूप में प्रस्तुत करना कवि की निर्माण कल्पना का द्योतक है।

निर्मातृ-कल्पना के द्वारा ही कवि का रचना कौशल व्यक्त होता है। उसकी दृष्टि दर्शनोन्मुखी है, अतः अश्वघोष वातावरण को एकदम परिवर्तित कर देते हैं। बुद्धचरित के चतुर्थ सर्ग में शृङ्गार-वर्णन के ठीक बाद ही दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है। रात्रि में प्रस्तुत वनिता के दर्शन होने परभी वर्णन द्वारा बुद्धमें राग की अपेक्षा विरागको ही उत्पन्न किया है।

सुन्दर कल्पनाओं के अभाव के लिए अश्वघोष ने अपने काव्यों में सौन्दर्य्ययुक्त चित्रों का आकलन किया है। बुद्धचरित के द्वितोय, चतुर्थ तथा पञ्चम सर्गों और सौन्दरनन्द के चतुर्थ सर्ग में सौन्दर्य चित्र उपलब्ध होते हैं। विरागोन्मुख सिद्धार्थ को विषयाभिमुख करने के लिए स्त्रियाँ प्रसाधनों, हावभावों और विलास-चेष्टाओं का प्रदर्शन करती हैं। उन्हीं में से एक स्त्री का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि—

"मुहुर्मुहुर्मदव्याजस्रस्तनीलांशुकाऽपरा।
आलक्ष्यरशना रेजे स्फुरद्विद्युदिव क्षपा॥" बु० ४।३१

सौन्दरनन्द में सुन्दरी तथा नन्द की केलि क्रीड़ा में संश्लिष्ट सौन्दर्यात्मक चित्रों का संयोगात्मक रूप देखने योग्य है।

"सा हासहसा नयनद्विरेफा,
पीनस्तनात्युन्नतपद्मकोशा।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन,
स्त्रीपद्मिनी नंद दिवाकरेण॥" सौ० ४।४

इतना ही नहीं—अन्य स्थलों पर भी :—

"सा तं स्तनोद्वर्तितहारयष्टिः,
उत्थापयामास निपीड्य दोर्भ्याम्।
कथं कृशोऽसीति जहासचोच्चैः,
मुखेन साचीकृत कुण्डलेन॥" सौ० ४।१९

अश्वघोष ने विप्रलंभ शृंगार के रम्य चित्रों का वर्णन बुद्धचरित तथा सौन्दरनन्द दोनों में किया है। कुमार सिद्धार्थ के वन से लौटे हुए छंदक व कंथक को देखकर अंतःपुर में विषाद की रेखा छा गई तथा स्त्रियाँ कुमार के वियोग से संतप्त होकर विलाप करने लगीं। उस समय राजभवन तथा शोक संतप्त नारियों का चित्राङ्कन मनोमुग्धकारी है। बुद्धचरित के अष्टम सर्ग में देखिये—

कर प्रहार प्रचलैश्च ता बभुः,
तथापिनार्यः सहितोन्नतैः स्तनैः।

वनानिलाघूर्णित पद्मकम्पितैः,
रथांगनाम्नां मिथुनैरिवापगाः ॥" ८।२९

सौन्दरनन्द के षष्ठ सर्ग में नन्द के प्रव्रजित हो जाने पर सुन्दरी के विलाप दग्ध विवर्ण मुख का वर्णन करता हुआ कवि कहता है:—

"तस्या मुख पद्मसपत्नभूतं,
पाणौ स्थितं पल्लवराजताम्रे ।
छायामयस्याम्भसि पङ्कजस्य,
बभौ नतं पद्ममिवोपरिष्टात् ॥"

अश्वघोष की सौन्दर्यात्मक कल्पना प्रकृति वर्णनों में भी परिलक्षित हो रही है। सौन्दरनन्द के प्रथम तथा दशम सर्गों में एवं बुद्धचरित के चतुर्थ एवं सप्तम सर्गों में प्रकृति के व्याज से सौन्दर्य चित्रों का विकास हुआ है। स्वर्ग के गमन पथ से जाते हुए नंद का सुगत की कल्पना करता हुआ कवि उन्हें चक्रवाक युगल के सदृश बतलाता है।

"काषाय वस्त्रौ कनकावदातौ,
विरेजतुस्तौ नभसि प्रसन्ने ।
अन्योन्य संश्लिष्ट विकीर्ण पक्षौ,
सरः प्रकीर्णाविव चक्रवाकौ ॥"

इसके अतिरिक्त अश्वघोष ने रसात्मक कल्पना एवं सादृश्य मूलक कल्पनाओं के द्वारा काव्य को सौन्दर्य से अनुप्राणित करके जगत् को आच्छादित करने की सफल चेष्टा की है। कुछ भी हो कवि प्रतिभा की चरितार्थता नवीन वस्तु योजना मे ही निहित होती है। अश्वघोष ने अपनी इच्छा के अनुरूप प्रकृत-कथा-वस्तु में परिवर्तन करते हुए नवीन कथाओं का भी समावेश किया है।

अन्ततोगत्वा अश्वघोष प्रतिभा के आधार पर ही कवि जीवन गत सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियों की सौन्दर्यमय सफल अभिव्यक्ति करता है, यह कथन सत्य ही है।

अश्वघोष की शैली

महाकवि अश्वघोष की रचना शैली का अध्ययन करने के लिए चार बातें विचारणीय हैं।

(१) शैलीगत विशेषताएँ

(२) उपमान योजना

(३) रस, अलंकार और छंद

(४) भाषा

कवि अपनी रचना शैली के द्वारा ही लोक रुचि को आकर्षित करता है तथा इसी से उसकी कला का उदात्त स्वरूप प्रकट होता है और उसके व्यक्तित्व का आभास मिलता है। कोई भावों को मृदु शैली के द्वारा सरल शब्दों का प्रयोग कर पाठकों को बौद्धिक व्यायाम कराता है। इनमें प्रथम कोटि की शैली शुद्ध काव्यात्मक है। द्वितीय कोटि की दार्शनिक या शास्त्रीय। अश्वघोष के व्यक्तित्व में कवि तथा दार्शनिक दोनों का ही समन्वय है परन्तु शैली के विषय में वे जानते थे कि रुचिरस्वरवर्णपदा रसभावती कविता ही जगत् को आह्लादित करती है अतः उन्होंने सरल शैली का ही प्रश्रय लिया।

कोमल पदावली एवं भावपूर्ण भाषा का व्यवहार अश्वघोष की शैली की प्रमुख विशेषता है। शास्त्रीय परिभाषा में वेदमयी शैली का लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार किया है:—

"माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका,
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ॥"

दण्डी के अनुसार कालिदास ने वैदर्भी शैली की उद्भावना की 'तेनेदं वर्त्म वैदर्भं कालीदासेन शोधितम्' इनके 'शोधितं' पद के अनुसार अश्वघोष ही वैदर्भी रीति के संस्थापक थे। वैदर्भी शैली की उपयुक्त विशेषताएँ अश्वघोष के काव्यों में सुलभ हैं। उन्होंने वाणी को अमृत के समान कहकर मानों विल्हणके 'अनभ्रवृष्टिः श्रवणामृतस्य,सरस्वती विभ्रम जन्मभूमिः वैदर्भी रीतिः' की पुष्टि की है। उन्होंने अनेक स्थलों पर स्पष्ट अभिव्यक्ति का चयन किया है। सौन्दरनन्द के 'व्यञ्जनचारुसास्नां गाम्" से विदित होता है कि अश्वघोष की स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रधान शैली प्रिय थी।

अनेक काव्यों में ललित पदावली, सुकुमारभाव, अविकटाक्षरबन्ध-प्रधान शैली का विधान सर्वत्र पाया जाता है। वैदर्भी शैली का निदर्शन सौन्दरनन्द में देखिये—

"सा हास हंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनत्युन्नति पद्मकोशा।
भूयो बभासे स्वकुलोदितेन स्त्री पद्मिनी नन्द दिवाकरेन ॥" ४।४

उपर्युक्त श्लोक में काव्य का सरल प्रवाह दर्शनीय है जो कि उनके काव्य की मौलिक शैली है। इसके अतिरिक्त उनकी शैली में अन्य विशे-

घनाएँ भी पाई जाती है। उनकी शैली में चित्राङ्कन विधान की प्रवृत्ति पाई जाती है, जैसे साधुपुरुष का वर्णन करते हुए बुद्धचरित में वे कहते हैं—

स्थूलोदरः श्वासचलच्छरीरः स्रस्तांसबाहुः कृशपाण्डुगात्रः।
अम्बेति वाचं करुणं ब्रुवाणः परं समाश्लिष्य नरः क एषः॥३।४१

इस प्रकार की शैली बुद्ध जन्म पर प्रसुप्त वनिताओं के वर्णन नन्द एवं सुन्दरी की प्रेम क्रीड़ा तथा नन्द एवं बुद्ध के कथोपकथन में प्राप्त है। इस प्रकार के कल्पना चित्रों में एक कलाकार विविध रंग भरकर सर्वोत्तम चित्रों का रूप प्रदान कर सकता है।

अश्वघोष की शैली की अन्य विशेषता रूपकात्मकता की है। भावात्मक पदार्थों—कृति, धृति बुद्धि, धर्म आदि स्थूल पात्र रूप में प्रस्तुत किए गये हैं। अश्वघोष ने अलंकारों के द्वारा वस्तुतः चमत्कार का ही कार्य किया है। सौन्दरनन्द में कपिलवस्तु वर्णन की समाप्ति पर तथा नन्द व भिक्षु के वार्तालाप में यमक का प्रयोग देखने योग्य है:—

"यस्मादन्यायतस्ते च कंचिन्नाचीकरन् करम्।
तस्मादल्पेन कालेन तत्तदापूरयन्पुरम्॥" १।५६

अश्वघोष की शैली का एक अन्य प्रमुख गुण कला की ध्वन्यात्मकता है। वह प्रायः एक सा ध्वनि साम्य है जो संज्ञा तथा क्रिया दोनों में ही हुआ है। सौन्दरनन्द में १८।१० में तथा ४।३ में 'कृत्स्नं कृतं मे कृतकार्यकार्य' तथा 'कुलस्य नन्दी जननश्च नन्दः' आदि इस शैली के निदर्शन है।

उनके काव्यों में ऐसे भी स्थल हैं जहाँ एक ही शब्द को लेकर पूरा पद्य ग्रथित है। सौन्दरनन्द की सुन्दरी का वर्णन कवि ने कितनी विदग्धता से किया है:—

'सा पद्मरागं वसनं वसाना, पद्मानना पद्मदलायताक्षी।
पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः शुशोष पद्मस्रगिवातपेन॥"

उनकी शैली वर्णनात्मक, उपदेशात्मक दृष्टान्तप्रधान तथा तार्किक प्रतिभा के उन्मेष से युक्त है। उन्होंने प्राचीन राजाओं, महर्षियों तथा रामायण एवं महाभारत में प्राप्त राम, दशरथ, आत्रेय, वशिष्ठ, कपिल, वाल्मीकि, व्यास, दीर्घतपस्, पाराशर आदि का उल्लेख करके उपर्युक्त ... का दर्शन कराया। शैलीगत प्रमुख विशेषताओं के अतिरिक्त कई

अन्य सामान्य विशेषताएँ हैं। वे कहीं कहीं संख्यात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। सौन्दरनन्द के १७वें सर्ग के ६८वें श्लोक में कवि कहता है:—

"इति त्रिवेगं त्रिभषं त्र्यवीचमेकाम्भसं पञ्चरयं द्विकूलम्।
द्विग्राहमष्टाङ्गवताप्लवेन दुःखार्णवं दुस्तरमुत्ततार ॥"

इसमें अर्थों की स्पष्ट अभिव्यञ्जना नहीं है। अतः सरल शैली का यह दोष ही है किन्तु "एको ही दोषः गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विाङ्कः" के समान वह नगण्य है।

शब्दों की पुनरावृत्ति तो उनकी शैली का सहज गुण है। बुद्धचरित में 'कस्यात्मवतो रतिः स्यात्' की पुनरावृत्ति हुई है। सौन्दरनन्द मे भी इसका व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह शैलीगत विशेषता संभवतः अश्वघोष ने महाभारत से ग्रहण की है। दो पदार्थों में पार्थक्य प्रदर्शन करने के लिए उन्होंने 'क्व' शब्द का प्रयोग किया है—

"शम प्रधान' क्व च मोक्षधर्मः।
दण्डप्रधानः क्व च राजधर्मः ॥" बु० ९।४८

सुगत द्वारा पूछे जाने पर नन्द उत्तर देते हैं:—

"क्व चोत्तमस्त्री भगवन्वधूस्ते,
मृगी नगक्लेश करी क्व चैषा।"

यह उस समय का कथन है जब स्वर्ग में सुगत नन्द को एक कानी बंदरी दिखा कर कहते हैं कि इस बंदरी एवं सुन्दरी स्त्री में कोई विशेष अन्तर नहीं है परन्तु इन दोनों में अन्तर की महानता 'क्व' शब्द के प्रयोग से दर्शित की गई है। कालिदास ने भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है। कुमार सम्भव के पाँचवें सर्ग में शङ्कर जी पार्वतीजी से—तप एवं उसके कोमल शरीर—दोनों विपरीत वस्तुओं में महान् अन्तर है—इस बात का दिग्दर्शन 'क्व' शब्द के प्रयोग द्वारा ही कर हैं :—

"तपः क्व वत्से क्वच तावकं वपुः।'

संदेहात्मक स्थलों का परिचय देने के लिए 'वा न वा' पद का अनेक बार प्रयोग किया है। सौन्दरनन्द के नवें सर्ग में—'सुखानि यत्नेन भवन्ति वा न वा' इसी प्रकार का प्रयोग है।

अन्त में अश्वघोष ने अपनी शैली में रस, छंद, अलंकारों का भी यथास्थान समुचित प्रयोग किया है। उनकी शैली सरल, लालित्यमयी तथा प्रवाहमयी है जो कि उनकी मौलिक प्रतिभा का ज्वलंत निदर्शन है।

अश्वघोष की उपमान योजना

(१) अश्वघोष ने अपने काव्य-ग्रन्थों में अभिव्यक्ति के साधनभूत उपमानों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उन्हें इन उपमानों से धर्माभिवृद्धि में महान् सहयोग मिला है। अश्वघोष की उपमान योजना में, गर्नर के अनुसार मनोवैज्ञानिक अभिरुचि की प्रधानता थी। उन्होंने काव्य में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व के चित्र उपस्थित किए हैं। पत्नी की अनुमति लेकर बुद्ध के प्रति जाते समय नन्द की मनोदशा, छंदक के "ययौ शरीरेण पुरं न चेतसा" में और नन्द के मानसिक असंतुलन में अश्वघोष की मनोवैज्ञानिक अभिरुचि प्रकट होती है।

(२) लोक जीवन के उपमान प्रथम हैं। नगर की सीमा के लिए अष्टापद (महोप्रान्तं अष्टापदमिवालिख्य १।३०) पर्वत सहित पृथ्वी का तरंगाहत नौका की भाँति कांपना (साचला प्रचचालोर्वी तरङ्गाभिहतेव नौः') तथा स्वर्णकार की प्रक्रिया के सदृश योगी की मानसिक शुद्धता की प्रक्रिया (उल्कामुखस्थं हि यथा सुवर्णं सुवर्णकारो धमतीह काले १६।६५) आदि लौकिक उपमान हैं।

इत्सिंग महोदय ने ठीक ही कहा कि:—

"He clothes manifold ideas in few words, for besides his habitual use of words in two or more meanings, every single word almost in his poem is pregnant and should be given its full value and translation."

(३) धार्मिक तथा शास्त्रीय उपमानः—इन्द्र, कुबेर, बृहस्पति, महादेव, वामदेव, वशिष्ठ आदि सिद्धार्थ, शुद्धोदनि, नन्द तथा अन्य पात्रों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। धर्म नदी का वर्णन करते हुए अश्वघोष ने लिखा है—

प्रज्ञाम्बुवेगां स्थिरशीलवप्रां समाधिशीतांव्रतचक्रवाकाम्।
अस्योत्तमां धर्मनदीं प्रवृत्तां तृष्णार्दितः पास्यति जीवलोकः॥

(४) दार्शनिक उपमानों का विवेचन अश्वघोष की अपनी मौलिक उद्भावना है। सौन्दरनन्द—११।५६ मे देखिए—

"सूत्रेण वद्धोहि यथा विहगोव्यावर्ततेदूरगतोऽपि भूयः।
अज्ञान सूत्रेण तथावबद्धो गतोऽपि दूर पुनरेति लोकः॥"

रस, अलंकार एवं छन्द

अश्वघोष के महाकाव्य रसात्मकता से परिपूर्ण हैं। रस तत्व का निर्वाह करने के लिए ही उन्होंने प्रणय दृश्यों की योजना की है। उनके द्वारा बुद्धचरित में प्रयुक्त "रसान्तरं स्यादिति गन्यमानः ३।५१" और सौन्दरनन्द में प्रयुक्त 'कार्यान्तरं' (१६।१७) शब्दों का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक रस सिद्धान्त है। अश्वघोष के काव्यों मे प्रायः समस्त रसों की छटा विद्यमान है। परन्तु प्रमुख रूप से शृङ्गार, करुण और शान्त रसों का प्रयोग हुआ है।

बुद्धचरित के द्वितीय, चतुर्थ और पञ्चम सर्गों में तथा सौन्दरनन्द के चतुर्थ सर्ग में शृङ्गार रस का परिपाक हुआ है। जहाँ बुद्धचरित में स्त्रियाँ अपनी शृङ्गार चेष्टाओं से बुद्ध को मोहित करती है वहाँ सौन्दरनन्द में नन्द तथा सुन्दरी की कामक्रीड़ा में शृङ्गार के दर्शन होते हैं। संयोग शृंगार के उदाहरण देखिए:—

मुहुर्मुहुर्दव्याजसृतनीलांशुका परा।
आलक्ष्य रशना रेजेस्फुरद्विद्युदिवक्षपा॥बु० ४।३१

सा हास हंसा नयनद्विरेफा पीतस्तनात्युन्नतपद्मकोशा।
भूयो वभासे स्वकुलोदितेन स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाकरेण॥सौ० ४।४

सिद्धार्थ के लिए सनत्कुमार की उपमा दो स्थलों पर कवि ने दी है। बुद्धचरित में 'सनत्कुमार प्रतिमः कुमारः' तथा 'मघवन्तं त्रिदिवे सनत्कुमारः' कहा गया है।

(५) आयुर्वेदिक उपमान—अश्वघोष के काव्यों में व्याधि तथा औषधि रूप में मानसिक दशा के लिए उपमानों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। उन्होंने [illegible] पग पग पर रोग, रोगी, औषधि, वैद्य का क्रमशः दोष, व्यक्ति, साधन तथा उप[illegible]शक के लिए व्यवहार किया है। कफ, पित्त तथा [illegible] का उपमान रूप में वर्णन [illegible] सौन्दरनन्द में विशेष उल्लेखनीय है :—

रागोद्धव व्याकुलितेऽपि चित्ते मैत्रोपसंहारविधिर्न कार्यः ।
रागात्मको मुह्यति हीन मैत्र्या स्नेहं कफक्षोभ इवोपभुज्य ।। सौ० १६।५९

प्राकृतिक उपमानः—प्रकृति के अभिराम क्षेत्र से उपमानों का चयन साहित्य का एक प्रमुख विशेषता रही है। अश्वघोष के प्राकृतिक उपमानों में पर्वत, नदी, पद्म, वायु, व्याघ्र, गज, रात्रि, आकाश, नक्षत्र, हंस, कुररी आदि का व्यवहार हुआ है। एक ही स्थल पर शशि, सिंह का प्रयोग 'शशिसिंहासन विक्रम' गर्नर के अनुसार—विभाजकोपमा कहा गया है। सौन्दरनन्द के निम्न उद्धरण में अश्वघोष की प्रकृति विपयक सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय मिलता है:—

कासां चिदासांवदनानि रेजुर्वनान्तरेभ्यश्चलकुण्डलानि ।
व्याविद्ध पर्णेभ्य इवाकरेभ्यः पद्मानि कारण्डव घाहतानि ।। १०।३८

(६) रूपात्मक उपमान—यद्यपि पूर्ण मौलिक नहीं है तो भी दुःख, चिन्ता, समाधि आदि को रूपात्मक उपमानों के द्वारा प्रस्तुत कर कवि ने उनका एक स्थूल स्वरूप सा स्थिर कर दिया है। इनके प्रयोग से काव्य साहित्य के विकास का आभास मिलता है। अनुप्रास की छटा सौन्दरनन्द में देखिए :—

"अशोक मालम्व्य स जातशोकः प्रियां प्रियाशोक लतां शुशोच ।। (७।५)
प्रिया प्रियायाः प्रतनुं प्रियंगु प्रिया प्रियस प्रसवावदामाम् ।।७।६।।
सा पद्मरागं वसन वसाना पद्मानना पद्मदलायताक्षी ।
पद्माविपद्मा पतितेव लक्ष्मीः शुशोष पद्मस्रगि वातपेन ।। ६।२६।।

यमक का प्रयोग अश्वघोष ने एक घटना या वर्णन की समाप्ति पर कलात्मक रूप से किया है। सौन्दरनन्द में "करन करं", पुरन पुरं' तथा 'हितं हितं', 'गिरन् गिरं' की आवृत्ति इसी प्रकार हुई है।

उपमालंकार का प्रयोग कवि ने अत्यधिक किया है। वे स्वाभाविक उपमाओं का प्रयोग करते हैं। उनके लिए अश्वघोष ने कोई परिश्रम नहीं किया। सुन्दरी के विवर्ण मुख को शरद्कालीन चन्द्रमा के समान विवर्ण बतलाया गया है:—

"विवर्ण वक्त्रा न रराज चाशु,
विवर्ण चन्द्रेय हिमागमे द्यौः ।।६।९।।

अश्वघोष ने लोक जीवन के उपमान, धार्मिक तथा शास्त्रीय उपमान, आयुर्वेदिक उपमान, प्राकृतिक उपमान, रूपात्मक उपमान तथा मनोवैज्ञानिक उपमानों का अपने काव्यों में सफल प्रयोग किया है। इनके अतिरिक्त उत्प्रेक्षा, रूपक, अर्थान्तरन्यास, एकावली एवं यथासंख्य अलंकारों का कवि ने प्रयोग किया है। उत्प्रेक्षा को देखिए:—

"सा चक्रवाकीव भृशं चुकूज श्येनाग्र पक्षक्षत चक्रवाका।
विस्पर्द्धमानेव विमान संस्थैः पारावतैः कूजन कूल कण्ठैः॥"

शिष्ट दुखं स्रोतसि निर्वाणन्य वर्तते तत्।
×××　　×××　　×××
अतः परं ज्ञानमिदं यतेन्द्रियो निरंतरं भावयतु विमुक्तये।
(शारिपुत्र प्रकरण के अवशेष से)

अन्य रसों का प्रयोग आनुषङ्गिक रूप में हुआ है। मार (कामदेव) तथा बुद्ध के युद्ध में वीर भयानक तथा रौद्र रसों की यत्किञ्चित झलक प्राप्त होती है। मार युद्ध-भूमि में स्थित एक वीर पुरुष की भाँति बुद्ध को ललकारता है:—

"उत्तिष्ठ भोः क्षत्रिय मृत्युभीत ! चर स्वधर्मं त्यज मोक्षधर्मम्।
बाणैश्च यज्ञैश्च विनीय लोकं लोकात्पदं प्राप्नुहि वासवस्य॥"
(बु० १३।९)

सैद्धान्तिक रूप से हास्यरस अनभिप्रेत था परन्तु व्यावहारिक रूप में कवि ने नाटकों में विदूषक का सृजन कर हास्य रस का उद्घाटन किया है। विदूषक कहता है:—

'धरामि वुम् वित्तवतो वहु ....।'
'हन्तो सु आमोये गणिका कुले सवहु।' इत्यादि

सौन्दरनन्द में भी अप्सराओं की प्राप्ति के लिए नन्द का उपहास आनन्द करता है:—

"आकारेणावगच्छामि तव धर्मं प्रयोजनम्।
यज्ज्ञात्वा त्वयि मे जातं हास्यं कारुण्यमेव च॥" ११।२३

अश्वघोष ने शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार दोनों का प्रयोग अपने काव्यों में प्रचुरता से किया है। उन्होंने अलङ्कारों का नैसर्गिक प्रयोग ही

किया है। प्रसंगानुसार अलङ्कारों की स्वतः ही उपस्थिति हुई है, अनुप्रास और यमक द्वारा उनकी शैली में ध्वनिमयता का अर्जन हुआ है।

"इमाश्च विक्षिप्त त्रिटङ्क वाचहः प्रसक्त पारावत दीर्घनिस्वनाः।
विना कृतास्तेन सहावरो धनैर्भृशं रुदन्तीव विमान पङ्क्तयः।
(बु० ८।३१)

ठीक यही प्रासाद-स्थित कपोती की दशा सौन्दरनन्द में सुन्दरी के विलाप के समय होती है।

"सा चक्रवाकीव भृशं चुकूज श्येनाग्रवक्षक्षत चक्रवाका।
विस्पर्धमानेव विमानसंस्थैः पारावतैः कूजन लोल कण्ठैः।
(सौ० ६।३०)

शान्त रस का प्रयोग अश्वघोष की मौलिक विशेषता है। धर्मोपदेश के लिए उनका यह इष्ट रस था। अन्य रसों की योजना काव्य धर्मों का निर्वाह करने के लिए हुई है। धर्मतत्वों के कथन में, आश्रमों के वर्णन तथा प्रकृति के शान्त स्वरूप वर्णन में इसका उपयोग हुआ है। सौन्दरनन्द के अन्तिम सर्ग में नन्द के गुरू के पास जाने पर शान्त रस का प्रवाह स्पृहणीय है।

दिष्टयासि शान्ति परमामुपेतो निस्तीर्णकान्तार इवाप्तसार :।
सर्वो हि संसारगतो भयार्तो यथैव कान्तार गतस्तथैव ॥
(१८।३२)

स्वयं अश्वघोष ने अपनी रचना का लक्ष्य शान्ति ही बतलाया है :-

"इत्येपाव्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थ गर्भा कृतिः। (१८।६३)

नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने केवल ८ रसों का उल्लेख किया है। सर्व प्रथम अश्वघोष ने ही नाटकों में शान्तरस का प्रयोग किया। मध्य में श्रंगार होते हुए भी शारि पुत्र प्रकरण का पर्यवसान शान्त में ही होता है।

"सातं स्तनोद्वर्तितहारयष्टिः उत्थापयामास निपीड्य दोर्भ्याम्।
कथ कृतोऽसीति जहास चोर्च्चं मुखेन साचीकृत- कुण्डलेन। (सौ०४।०९)

विप्रलंभ शृंगार यशोधरा तथा सुन्दरी के विलापों में प्रकट होता है। दोनों पति शोक से दग्ध हैं। परन्तु यशोधरा का वियोग मर्यादा के बन्धनों को नहीं तोड़ता, उसकी वेदना गृहणी सदृश है तथा हृदय में ही आत्मसात

कर ली जाती है। वियोग श्रृंगार का सक्रिय रूप सुन्दरी में प्रकट होता है। सौन्दरनन्द में उसकी व्यथा का अवलोकन कीजिये :—

सदृश्य भर्तुश्च विभूषणानि, वासांसि वीणा प्रभृतीश्चलीला: ।
तमो विवेशाभिननादचोच्चै: पङ्कावतीर्णेव च ससाद । ६।३१
सा सुन्दरी श्वास चलोदरी हि वज्राग्निसभिन्नदरी गुहेव ।
शोकाग्निनान्तर्हृदि दह्यमाना विभ्रान्त चितेव तदा बभूव ॥ ६।३२

करुण रस की यह धारा बुद्धचरित के ८वें सर्ग में बुद्ध के दु:खी पुरवासियों, माता पिता, यशोधरा आदि का विलाप, वातावरण की करुण दशा से अत्यधिक तीव्र हो गई है। सिद्धार्थ-वियोग में गौतमी के इस विलाप को सुनकर अन्त:पुर विषाद मग्न हो जाता है यथा :—

इमं प्रलापं करुणं निशम्य ता भुजैर्परिष्वज्य परस्परं स्त्रिय: ।
विलोचनेभ्य: सलिलानि तत्यजुर्मधूनि पुष्पेभ्यइवेरितालता: ।

(कु० ८।५८)

अश्वघोष का करुण रस मानव के संवेदनशील हृदय तक सीमित नहीं है। अपितु वह अपने प्रवाह में चराचर जगत को समेट लेता है। सिद्धार्थ के वियोग में कवि ने उत्पेक्षा के द्वारा प्रसादों को भी रुला दिया है यथा :—

'बहुदोषां हि वदन्ति धर्मचर्याम्' एवं 'सर्वेषुभूतेषु दयाहि धर्म: ।' बुद्धचरित के 'कुलोद्‌गतां प्रीतिमिवार्यवृत्त:' के उदाहरण कवि के अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार के सफल प्रयोग को बताते हैं।

रस तथा अलंकार के साथ ही छन्दों को विविधता तथा मनोज्ञता भी अश्वघोष की शैली का एक प्रधान गुण है। उनके काव्यों में अनुष्टुप, उपजाति, वंशस्थ रुचिरा, प्रहर्षिणी, वसंततिलका, मालिनी, शिखरणी शार्दूलविक्रीड़ित, सुवदना, सुन्दरी, पुष्पिताग्रा, उद्‌गाता आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। मन्दाक्रान्ता का प्रयोग सुकुमार सेन के अनुसार सर्व प्रथम हरिषेण कृत समुद्रगुप्त की प्रशस्ति में होता है जिसका भव्य रूप मेघदूत में है। उनके अनुसार अश्वघोष मन्दाक्रान्ता के अविष्कारक हैं। महाकाव्य के लक्षण के अनुसार संगीत पर छन्द परिवर्तन प्राप्त हैं। उनके प्रिय छन्द श्लोक, उपजाति, अनुष्टुप तथा वंशस्थ हैं। अश्वघोष के काव्यों में रस अलङ्कार एवं छन्दों का सुन्दर समन्वयात्मक परिपाक दृष्टिगोचर होता है।

नाटककार अश्वघोष

यह तो हम बता ही चुके हैं कि अश्वघोष के केवल तीन नाटक ही उपलब्धांश रूप में हैं और इन तीनों नाटकावशेषों में प्रथम रूपक नाटक है। नाट्यशास्त्र में इस प्रकार के रूपक नाटकों का लक्षण अप्राप्य है। इस बात से इसका पता चलता है कि अश्वघोष ही प्रथम नाटककार थे जिनकी मौलिक प्रतिभा ने रूपक नाटक जैसे नाटकों का सृजन किया, जो कि संस्कृत साहित्य में अद्वितीय था। यद्यपि अश्वघोष द्वारा रचित नाटकावशेष अत्यल्प मात्रा में ही उपलब्ध हैं तथापि इससे उनकी रचना शैली पर नाटक संविधान का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। नाटकों में चरित्र चित्रण एक महत्वपूर्ण तत्व है जिसका निर्वाह कवि ने न केवल सजीव पात्रों का प्रयोग करके ही किया है अपितु धृति, कीर्ति एवं बुद्धि जैसे भावात्मक पात्र भी रङ्गमञ्च पर परस्पर वर्तालाप करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसके पूर्व के नाटककार इस सूक्ष्म की कल्पना से अनभिज्ञ थे। शारिपुत्र प्रकरण में जिसका कि पूरा नाम 'शारद्वती पुत्र प्रकरण' है। शारिपुत्र को नन्द की तरह बौद्ध धर्म की दीक्षा दी गई है। इसके नव अङ्क हैं और उसकी समाप्ति पर यह लिखा है—"शारिपुत्र प्रकारणे नवमोऽङ्कः। सुवर्णाक्षीपुत्रस्य भदन्त श्वघोषस्य कृतिश्शारद्वतीपुत्र प्रकरणम् समाप्तम्।" उपर्युक्त लेख से यह स्पष्ट पता चलता है कि यह अश्वघोष की ही रचना है।

इस नाटक में शारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन की बौद्धधर्म में दीक्षित होने की कथा वर्णित है। इसमें नाट्यशास्त्र द्वारा प्रतिपादित सभी नियमों का समुचित पालन किया गया है। इसका नायक धीरप्रशान्तगुणोपेष्ठित है, नायिका कुलजा स्त्री है या वीरांगना इसका पता नहीं। हाँ एक कमी तो अवश्य खटकती है कि नाट्यशास्त्रानुसार इसमें अंकों के नाम का अभाव है परन्तु कीथ महोदय का मत है कि यह उस समय की सामान्य प्रवृत्ति–मात्र थी।

दूसरी बात यह है कि नाट्यशास्त्राचार्यों की दृष्टकोण से नायक के मुख से 'अतः परमपि प्रियमस्ति' इस प्रकार उच्चारण करने के अनन्तर भरत वाक्य का उच्चारण करना चाहिए परन्तु इस नाटक में भरत वाक्य बुद्ध भगवान के मुख से उच्चारित है। सुगत भरत वाक्य के द्वारा कहते हैं—

"अतः परं ज्ञानमिदं यतेन्द्रियो,
निरन्तरं भावयितुं विमुक्तये।"

यद्यपि उपर्युक्त भरत वाक्य 'अतः परमपि प्रियमस्ति' से अधिक भिन्नता नहीं रखता परन्तु तो भी यह बात आलोचकों द्वारा कथित ही है। जहां तक भाषा का सम्बन्ध है, नाटक मे श्रेष्ठ पात्र (बुद्ध, शारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन आदि) संस्कृत भाषा मे ही बोलते हैं एवं अन्य नीच पात्र तथा स्त्रियां प्राकृत भाषण करती हैं। नाटक के लिए विदूषक का समावेश अश्वघोष ने किया है यद्यपि वह नाटक के अन्तिम अङ्क में अदृश्य हो जाता है। शारिपुत्र, बुद्ध एवं मौद्गल्यायन के अतिरिक्त सभी पात्र कल्पित हैं। यद्यपि नाटक का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार करना ही था तथापि अश्वघोष ने शैली को विकासोन्मुख बनाने के लिए विदूषक एवं वाराङ्गनाओं का समावेश किया है। यह कवि की मौलिक उद्भावना एवं प्रतिभा का एक अच्छा निदर्शन है। क्योंकि कवि कला एवं धर्म को तराजू के एक एक पलड़े मे रखकर तौलना चाहता है और इस प्रकार उसके दोनों पलड़े समान ही बने रहते हैं, लोक धर्म को पनपाने के लिए लोक मनोविनोद का समावेश विदूषक के 'चरामि बुभुक्खितो बहु दधि' इस कथन से ही पुष्टतर हो रहा है। इस कथन मे प्राकृत भाषा का प्रयोग पात्रानुकूल ही है और इसी कारणवश कीथ महोदय का यह कथन कि 'अश्वघोष का प्राकृत भासादि से भी प्राचीन है' सत्य ही प्रतीत होता है और इसी पृष्ठभूमि पर उन्हें हम संस्कृत साहित्य का प्रथम नाटककार भी मानने को उद्यत हो जाते हैं।

इस नाटक में नान्दी का अभाव है और इस दृष्टिकोण से यह मृच्छकटिक के अधिक समीपस्थ है। कुछ भी हो यह तो पूर्ण रूप से निश्चित है कि यदि वह कालिदास एवं भास से पूर्ववर्ती है जैसा कि अधिकतर विद्वानों का मत है तो हम बरबस ही उस कलाकार के श्रद्धावनत हैं। यह तो हमारा दुर्भाग्य है कि उसकी समस्त कृतियाँ जीर्ण शीर्ण अवस्था मे होने के कारण अप्राप्य है अन्यथा तत्कालीन कलाकारों में वह अग्रगण्य होता। वस्तुतः अश्वघोष के लिए बौद्ध धर्म तो सदैव ऋणी रहेगा ही, साथ ही साथ उस कलाकार ने जो भी संस्कृत साहित्य को निधियां भेंट की हैं वे अमूल्य हैं और इसके लिए संस्कृत साहित्य भी उनका ऋणी है यह कथन भी अक्षरशः सत्य है।

महाकवि अश्वघोष का संस्कृत साहित्य में स्थान

विकासोन्मुख काव्य-साहित्य-माला की प्रारम्भिक कड़ी होने पर भी अश्वघोष की कृतियों का साहित्य जगत में अन्यतम स्थान है क्योंकि इनमें

सच्ची कवि प्रतिभा को उन्मुक्त रूप से प्रकट होने का अवसर मिला है तथा काव्य शैली एवं दर्शन का कलात्मक एवं विचार-प्रधान स्वरूप मुखरित हो उठा है।

जहाँ तक काव्य–रचना–प्रणाली का प्रश्न है। अश्वघोष एक सफल कवि हैं। इस सम्बन्ध में उनका काव्य-धर्मों का शास्त्रीय ज्ञान महत्वपूर्ण हैं। कवि ने महाकाव्य के नियमों का पालन अपने दोनों महाकाव्यों बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द में किया है। सर्ग की समाप्ति पर छंद परिवर्तन, प्रख्यात राजर्षि वृत्त का ग्रहण, अङ्गी तथा अङ्ग रसों का वर्णन, प्रणय तथा युद्ध के दृश्य आदि का वर्णन किया है। यद्यपि शास्त्रीय ग्रंथों की रचना बाद में हुई।

अश्वघोप के नाटक अत्यल्प होने पर भी नाटक साहित्य की अतुल सम्पत्ति है। ईसा की प्रथम शताब्दी में संस्कृत नाटकों का कलापूर्ण विकास अतीव विस्मयकारी है। इन नाटकों में नाट्यशास्त्रीय नियमों का अधि-कांशत: पालन हुआ है। पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग, विदूषक का समावेश उनका अभिनय आदि अश्वघोष के नाटकों की मौलिक विशेषताएँ हैं। उनका रूपक नाटक संस्कृत नाटक साहित्य में एक पूर्ण मौलिक एवं अभि-नव प्रयोग है। इसमें अश्वघोष की कवित्व शक्ति कल्पना के रंगीन पंखों का आश्रय लेकर उड़ने लगी है। धर्म, धृति, कीर्ति, बुद्धि आदि सर्वथा परोक्ष एवं भावमयी सत्ताओं को रंगमञ्च पर उपस्थित कर प्रेक्षकों में रसा-नुभूति को उत्पन्न करना सिद्ध कलाकार कार्य है।

नाटकों में शांत रस का प्रयोग तथा उसका सफलता–पूर्वक निर्वाह साहित्य जगत में कवि की मौलिक एवं अप्रतिभ देन है। परम्परावादी साहित्यिकों को यह प्रयोग एक खुली चुनौती थी। काव्य परंपरा का यह विरोध भरत वाक्य में, एवं अङ्कों के नामकरण न करने आदि कई स्थलों पर हुआ है। नागानन्द में अश्वघोष के शांत रस एवं बौद्ध धर्म का अनु–करण हुआ है। अत: रूपक नाटकों के जन्मदाता तथा नाटकों में शान्तरस की योजना करने वाले सर्वप्रथम नाटककार अश्वघोष ही थे।

रचना–शैली के प्रसंग में अश्वघोष की सर्वाधिक मुख्य देन उपमानों की है। यद्यपि उपमा और रुपक के आधार पर धर्म की व्याख्या की पद्धति

पालिग्रंथों, महाभारत, रामायण आदि में भी थीं तथापि अश्वघोष के दृष्टान्त के रूप में जिन व्यक्तियों का उल्लेख किया है वह भी उनकी एक मौलिक देन है। इन संकेतों का ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा दार्शनिक महत्त्व है।

काव्य-शैली के क्षेत्र में अश्वघोष की अन्य प्रमुख देन भाषा का संस्कार है। रामायण, महाभारत से शाब्दिक साम्य होने पर भी भाषा में विकास की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। भाषा का संस्कार करने के लिए कवि ने अलङ्कार और छन्दों का प्रयोग किया है। अनुप्रास तथा यमक के द्वारा भाषा में रोचकता उत्पन्न की गई है। परन्तु इससे शैली में किसी दोष का आगमन नहीं हुआ। उसमें सर्वत्र प्रवाह है, ध्वनिमयता है तथा शब्दोच्चारण में वीणा के झंकृत तारों की सी अनुरणनात्मक ध्वनि निकलती है। जैसे—"भूयो भयान्मान ममाप नन्दः" (सौ० ४।७) । अतः एक ओर अलङ्कार एवं छन्दों से भाषा आकर्षक बनाई तो दूसरी ओर शब्द-लाघव द्वारा भाषा को एक नवीन रूप दिया है। क्रियापदों का इतना विशुद्ध प्रयोग तथा चयन शायद किसी कवि ने किया हो।

अश्वघोष ने कवि धर्म के दायित्व को समाज कल्याण एवं भूतानुकम्पा माना है। यह मान्यता अन्यत्र दुर्लभ है उन्होंने काव्य का ग्रहण तत्त्वोपदेश के लिए किया, विषय सेवन के लिए नहीं। काव्य-साहित्य में मानव हृदय के अच्छे या बुरे उद्भूत भावों की वैसी ही अभिव्यक्ति महाकवि की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। नंद कामातिशयता के कारण तपस्या में प्रवृत्त नहीं हो सका। यद्यपि यह गर्हित प्रवृत्ति है तथापि उसको प्रकट करना काव्य में महत्वशाली होता है।

अश्वघोष की विचार शैली की एक अन्य विशेषता मनोवैज्ञानिक धरातल पर भावों का विश्लेषण करना है। इस दृष्टि से वे संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम कलाकार हैं। इस मनोवैज्ञानिक सत्य के आधार पर ही उपदेशों को हृद्य बनाने के लिए उन्होंने काव्य रचना की, क्योंकि—'तिक्तमिवौषधं हि मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति।' विचार-प्रणाली के सम्बन्ध में ही यह ज्ञातव्य है कि अश्वघोष बौद्ध धर्म के परम भक्त थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में अश्वघोष काव्य कला को मनोज्ञ रचना शैली तथा सुलझी हुई विचार शैली को लेकर अवतीर्ण हुए। अब उनकी कृतियों का संस्कृत साहित्य में क्या स्थान है यह देखना है—यद्यपि उनकी कृतियाँ कालिदास की कृतियों से होड़ नहीं लगा सकती तो भी वे साहित्यिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से अद्वितीय हैं। कालिदास को

रचनायें विकास की चरम सीमा व लोक में बनीं जबकि अश्वघोष की रचनायें विकासोन्मुख युग की होने पर भी इतनी सुरुचिपूर्ण एवं मनोज्ञ हैं कि कवि की कला पर विस्मय होता है। उन्होंने शैली तथा विचार दोनों ही रूपों में परवर्ती साहित्य पर अपनी छाप छोड़ी है अतः साहित्य जगत में वे उस स्थान के अधिकारी हैं जो एक सर्वगुण सम्पन्न कलाकार के लिए अपेक्षित है।

जान्स्टन के अनुसार अश्वघोष की कृतियों के असम्मान होने के दो कारण थे—रुचि परिवर्तन तथा बौद्धधर्म के प्रति अनास्था। अतः बौद्धधर्म के लोप से उनकी कृतियों का भी लोप हो गया। यह सौभाग्य की बात है कि चीनी, तिब्बती तथा नेपाली साहित्य प्रेमियों ने उन कृतियों की रक्षा की और पाश्चात्य विद्वानों ने उनका उद्धार किया। सत्य तो यह है कि अश्वघोष का जीवन व कृतित्व और काव्य वह पावन त्रिवेणी है जिसमें काव्य, धर्म एवं दर्शन की धाराओं का एकान्त विनिवेश हुआ है। जिसमें अवगाहन कर सहृदय काव्यानन्द की अनुभूति में तल्लीन हो जाता है।

अश्वघोष एवं कालिदास

किन्हीं दो कवियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए यह देखना आवश्यक है कि उनकी तुलनात्मक समीक्षा के स्रोत कौन कौन से हैं? शैली के दृष्टिकोण से हमें यह पता चलता है कि अश्वघोष की कला कालिदास की कला की भूमि तैयार करती है क्योंकि अश्वघोष के आर्ष प्रयोग कालिदास में अप्राप्य हैं। इतना ही नहीं अश्वघोष की कला के खुरदुरे सौंदर्य की अपेक्षा कालिदास का स्निग्ध सौंदर्य अश्वघोष की प्राग्भाविता को पुष्ट करते हैं।

अश्वघोष और कालिदास की कृतियों में कितनी ही सदृश शब्दावलियाँ और समानार्थक पंक्तियाँ पाई जाती हैं। इनमें से कुछ कालिदास की अपनी ही सूझ हो सकती है, कुछ जानबूझ कर या अनजान में उन्होंने अपनाई होंगी, कुछ काल क्रम से लुप्त मध्यवर्ती काव्यों से ली होंगी। अतः इन समानताओं के लिए परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से कालिदास अश्वघोष के ऋणी हैं। इन समान पंक्तियों को निम्न प्रसंगों में संजोया गया है:—

सौन्दरनन्द के चतुर्थ सर्ग में जब नन्द की चित्त-प्रवृत्ति सुगत के उपदेशों की ओर न झुक सकी तो कभी वह बुद्ध के गौरव की ओर आकृष्ट

होकर तप करने का निश्चय करता था तो कभी भार्या का अनुराग उसे अपनी ओर हठात् खींच लेता था। अतः वह अपने निश्चय से न इधर ही जा सका और न उधर ही। उसी का दिग्दर्शन निम्न पंक्तियों में अवलोकनीय है।

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष, भार्यानुरागः पुनराचकर्ष ।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ, तरस्तरङ्गेष्विव राजहंसः ।

इसी प्रकार का वर्णन कुमार सम्भव के पांचवे सर्ग में आया है। जिस समय अपर्णा पार्वती के तप से मुग्ध होकर ब्रह्मचारि वेषधारी शङ्कर ने अपने आपको पार्वती के समक्ष प्रकट कर दिया तो उस समय पार्वती न आगे ही बढ़ सकी और न पीछे ही हट सकीं, क्योंकि जिस प्रकार किसी नदी के बहाव को अचानक कोई मार्गस्थ पर्वत रोक लेता है उसी प्रकार भगवान आशुतोष पार्वती के समक्ष उपस्थित थे। देखिये :—

अद्य प्रभृत्य वनताङ्गि ! तवास्मि दासः,
क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
मार्गाचलव्यतिकरा कुलितेव सिन्धुः,
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ ।

उपरोक्त दोनों प्रसंगों में "न ययौ न तस्थौ" सामानार्थक भाव वाली हैं। इसी प्रकार के अन्यान्य प्रसंग दोनों कवियों की रचनाओं में भरे पड़े हैं।

बुद्धचरित के दशम सर्ग के—२३ वें श्लोक में,

आदित्य पूर्वं विपुलं कुलं ते,
नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च ।

इसी प्रकार रघुवंश के द्वितीय सर्ग के ४७वें श्लोक में,

एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वम्,
नवं वयः कान्तिमिदंव पुश्च ॥

उपरोक्त पंक्तियां समानार्थक ही प्रतीत होती हैं। बुद्धचरित के १३ वें सर्ग में जब सुगत तपस्या में रत, आसन लगाकर बैठते हैं तो काम (मार) अपनी समस्त सेना के साथ आकर उनके तप को डिगाना चाहता है परन्तु इसी बीच में एक आकाशवाणी होती हैं कि हे कुमार तुम्हारा श्रम करना व्यर्थ है।

"मोघं श्रम नार्हसि मार कर्त्तुम् ।"

क्व चोत्तमस्त्री भगवन्वधूस्ते ।
मृगी नगक्लेशकरी क्व चैषा ।''

तथा ब्रह्मचारि वेषधारी महादेव का तपःरत पार्वती के प्रति "तपः क्व वत्से क्व च तावकं वपुः' यह कथन बहुत ही शाब्दिक साम्य रखते हैं ।

संस्कृत साहित्य में चरित्र चित्रण की प्रथा का आरम्भ रामायण एवं महाभारत काल से ही प्रारम्भ हुआ । क्योंकि यही काल महाकाव्य का उद्‌गम माना जाता है । जिस प्रकार से एक कलाकार विविध रंगों से भर कर (अपनी कूची के द्वारा) किसी चित्र में जीवन डाल देता है । उसी प्रकार से कवि मानव चित्रों का अपने काव्य के माध्यम (शब्दों) द्वारा इस प्रकार से चित्राँकन करता है कि वे जीते–जागते, सजीव काव्य जगत के प्राणी ही बन जाते हैं। अश्वघोष भी इसी प्रकार के कलाकार थे ।

अश्वघोष का चरित्र चित्रण अत्यधिक चित्ताकर्षक है । जिस समय सुगत महल से निकल मनोविनोद के लिए पर्यटन करते हैं उस समय एक वृद्ध का मर्मस्पर्शी चित्र निम्न शब्दों में दृष्टिगोचर होता है । बुद्ध सारथि से पूछते हैं कि:—

"क एष, भो सूत! नरोऽभ्युपेतः
केशैसितैर्यष्टि विषक्त हस्तः ।
भ्रूसवृताक्षः शिथिलानताङ्गः,
किं विक्रियैषा प्रकृतिर्यदृच्छा ।।

यही नहीं, इससे अधिक मनोरम एवं जीते जागते चित्र हमें उन पंक्तियों में दिखाई पड़ते हैं जब कि दूसरी बार एक जराग्रस्त एवं मृतक को देखकर बुद्ध अपनी उत्सुकता प्रकट करते हुए सारथि से प्रश्न करते हैं। देखिए :—

(१) "स्थूलोदरः श्वासचलच्छरीरः स्रस्ताशबाहुः कृषपाण्डुगात्रः ।
अम्बेति वाचं करुणं ब्रुवाणः परं समाश्रित्य नरः क एषः" ।।

(२) "अथाब्रवीद्राजसुतः स सूतम्
नरैश्चतुर्भिर्ह्रियते क एषः ।
दीनैर्मनुष्यैरनुगम्य मानो,
विभूषितश्चाप्यवरुद्यते च" ।।

अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति के कारण अश्वघोष अपने शब्द चित्र बड़ी खूबी से खींच सके हैं। इसी प्रकार कालिदास अश्वघोष से एक पग और आगे बढ़ जाते हैं क्योंकि वे मानव हृदय की कोमल भावनाओं के, उत्सुकता उसकी विह्वलता के, उसके विविध भाववेशों के सच्चे पारखी थे। पार्वती के समक्ष शिव के आ जाने पर :—

मार्गाचल व्यतिकराकुलितेव सिन्धुः,
शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।

इतना ही नहीं, जब सीता जी लक्ष्मण से राम के लिए संदेश कहती हैं उसमें 'राम' को 'स राजा' कहकर कालिदास ने मानवीय भावों का चित्र ही मूर्त रूप में साकार कर दिया है। सीता के भारतीय नारी के आदर्शों का मानवीय करण निम्न पंक्तियों में मन को बलात् आकृष्ट कर लेता है। पाठक कवि का अनन्य भक्त बन जाता है। देखिये सीता जी कहती हैं —

साऽहं तपः सूर्यनिविष्टदृष्टिः,
ऊर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये।
भूयो यथा मे जन्मान्तरेऽपि,
त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः॥

कालिदास के चरित्र चित्रण अद्वितीय हैं। 'कृशाङ्गयष्टि सीता' 'सन्नत-गात्री पार्वती', 'तन्वीश्यामा यक्षपत्नी' एवं 'मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी शकुन्तला' के जीते जागते चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाते हैं। उनके पात्रों का व्यक्तित्व अपनापन लिए हुए हमारी कल्पना नगरी में हजारों वर्षों से निवास कर रहा है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि अश्वघोष का चरित्र चित्रण फीका है। वस्तुतः देखा जाय तो कालिदास अश्वघोष के ही ऋणी हैं।

अश्वघोष के दोनों काव्यों में चरित्र चित्रण काव्य के उस प्रारम्भिक युग की दृष्टिकोण से अद्वितीय है। सौन्दरनन्द में नन्द के मन में होने वाली यह उथल-पुथल कि वह बौद्ध धर्म में दीक्षित हो या न हो मनोवैज्ञानिक ही है और तभी तो वह एक क्षण बुद्ध के गौरव से आकृष्ट होकर बौद्धधर्म में दीक्षित होना चाहता है तो दूसरे क्षण प्रिया का अनुराग उसे पुनः हठात् वापिस खींच लेता है। इस परिस्थिति में उसकी स्थिति लहरों पर तैरते हुए राजहंस की सी हो जाती है कि वह कोई निश्चय नहीं कर पाता। तत्कालीन साहित्य की कसौटी पर यदि इस प्रकार के चरित्र

चित्रण कसे जांय तो स्वर्णिम ही निकलेगें जोकि बेजोड़ होंगे।

नन्द एवं सुन्दरी का प्रेम चकवा चकवी के समान था। इससे अधिक कवि की लेखनी क्या लिख सकती है। नारी जगत में सुन्दरी का चरित्र चित्रण कवि ने एक साधारण महिला के रूप में किया है जो कि नन्द के वियोग को सहन नहीं कर सकती। नन्द के चले जाने पर वह चिल्लाती है। रोती है और बेहोश हो जाती है। भारतीय नारी के लिए पति से बढ़कर संसार में कुछ नहीं है अतः सुन्दरी धर्म का बलिदान देकर भी अपने पति को अपने समक्ष देखना चाहती है। यद्यपि पश्चात्कालीन काव्यों में विरह वर्णन की चरम सीमा दिखाई गई है तो भी हम यह निश्चित रूपेण कह सकते हैं कि वह सब कुछ अश्वघोष के काव्य की झूठन है।

कालिदास की भांति ही नारी चित्रण में अश्वघोष बेजोड़ है। सुन्दरी को 'हासहंसा', 'नयनद्विरेफा' 'पीनस्तना' कहकर अश्वघोष ने नारी के नग्न सौंदर्य को अंकित किया है। इसी प्रकार बुद्धचरित मे भी सुगत, राजा शुद्धोदन, छन्दक, कथक, यशोधरा के चरित्र अद्वितीय हैं।

प्रकृति चित्रण:—कला में सौन्दर्याधान करने के लिए एक सफल चित्रकार की तरह कवि प्रकृति को पृष्ठभूमि बनाता है इसीलिए कालिदास भी प्रकृति के पक्के पुजारी बनकर अन्तर्जगत के सौन्दर्य को बहिर्जगत में भी देखते हुए दोनों में समन्वय ही नहीं प्रत्युत तादात्म्य स्थापित करना चाहते हैं। इनकी प्रकृति जड़ प्रकृति नहीं। इनकी दृष्टि में प्रकृति का प्रत्येक छोटा बड़ा तत्व मानव या देववत् चेतन है। चेतनों की तरह ही उनमें सुख-दुःख, भय-हर्ष एवं आशा-निराशा की अनुभूति है। एक ओर ऋतु संहार में मानव हृदय के उद्दाम प्रणय के थपेड़े प्रतिफलित हुए मिलते हैं तो दूसरी ओर शकुन्तला के पति-गृह जाने के अवसर पर कोई व्यक्ति क्षौम देने लगता है तो कोई लाक्षा-रस और उसके चले जाने पर गृह-ललनाओं की भाँति लताये भी पाण्डुपत्रों के आँसू गिराने लगती हैं। इसी प्रकार की अनुभूति अश्वघोष को भी हुई थी और इसीलिए तो सुन्दरी के विलाप के साथी उसके प्रासादों ने दो-दो आँसू बहाकर विप्रलम्भ की चरम सीमा को स्पर्श करने का सफल साहस किया था। इससे यह स्पष्ट पता चलता है कि अश्वघोष भी प्रकृति में मानवीकरण की एक पतली रेखा का स्पर्श करते हुए आगे बढ़ जाते हैं क्योंकि उनका प्रमुख उद्देश्य बौद्धधर्म का प्रचार करना था प्रकृति के रम्य स्वरूप में रमना नहीं।

प्रकृति-चित्रण में कवि का मन रमता नहीं दिखाई देता। भिक्षु अश्वघोष के लिए सम्भवतः प्रकृति भी विकृति का कारण रही हो। वे वाल्मीकि की भाँति प्रकृति के लावण्य को उद्दीपन की दृष्टि से कम देखते हैं, आलम्बन की दृष्टि से अधिक। परन्तु कहीं कहीं अश्वघोष का प्रकृति वर्णन कालिदास की भाँति मानव के सुख दुख में सुखी एवं दुःखी देखा जाता है। कुछ विद्वान् सौन्दरनन्द के हिमालय की तुलना कालिदास के कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग वाले हिमालय वर्णन से करते हैं परन्तु यह उपयुक्त नहीं।

उपमा अलंकार:—'उपमा कालिदासस्य' तो विश्व प्रसिद्ध सूक्ति है ही। कालिदास की उपमायें अनुरूपता, सरसता तथा अपूर्वता की दृष्टि से बेजोड़ हैं। यथा—"दिन क्षपामध्य गतेव सन्ध्या।" रमणीय होने के साथ साथ कालिदास की उपमायें यथार्थ हैं। स्वयम्वर में इन्दुमती राजाओं के मुखों पर निराशारूपी कालिमा छोड़ती जाती है जैसे दीप-शिखा महलों पर कालिमा छोड़ती जाती है। आगे बढ़ने पर उपमाओं की विविधता कालिदास में दर्शनीय है। मदन-दाह के अनन्तर शोकाकुला रति की उपमा सूखे तालाव में अकेली वची कमलिनी से दी गई एक मूर्त-उपमा है। शास्त्रीय उपमायें भी कई मिलती हैं—"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।" अमूर्त कल्पनाओं से भी कवि ने उपमायें ली हैं। पेटू विदूषक चन्द्रमा को मक्खन का गोला समझता है।

यद्यपि अश्वघोष की उपमायें कालिदास से बढ़कर नहीं है तो भी उन्होंने उपमा का स्वाभाविक प्रयोग अवश्य किया है। उनके दोनों काव्य उपमाओं से भरे पड़े हैं। उन्होंने शास्त्रीय उपमाओं का एवं ऐतिहासिक उपमाओं का सर्वाधिक प्रयोग किया है। उपमा का स्वाभाविक प्रयोग निम्न पंक्ति में दर्शनीय है जब कि नन्द को एक ओर बुद्ध का गौरव एवं एक ओर प्रिया का अनुराग अपनी-अपनी ओर खींचता है और वह तैरते हंस की तरह न जा ही सका और न ठहर ही सका।

"त गौरवं बुद्धगतं चकर्ष,
भार्यानुरागः पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ,
तरंस्तरंगेष्विव राजहसः॥"

इसी प्रकार बुद्ध के विना भिक्षा के लौटने पर नन्द की मनो-व्यथा का स्वाभाविक चित्रण उपमा द्वारा देखिये :—

"चचाल चित्ताभरणाम्बरस्रक्,
कल्पद्रुमो धूत इवानिलेन।" सौ० ४।३१

अन्य अलंकारों का प्रयोग

अन्य अलंकारों के प्रयोग में भी कालिदास ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनकी कविता आवश्यक अलङ्कारों के भार से आक्रांत कामिनी की भाँति मंथर गति से चलने वाली नहीं, अपितु 'स्फुटचन्द्रतारका विभावरी' की भाँति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदय के हृदय को आकृष्ट करनेवाली है। अनुप्रास उनकी काव्यधारा में अनायास ही आ गये हैं :—

"प्रजा: प्रजानाथ पितेव पासि।"

यमक से रसभङ्ग होने की आशङ्का रहती है इसलिए कवि ने उसका क्वचित् ही प्रयोग किया है जैसे—

"वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।"

इसी प्रकार श्लेष से काव्य की क्लिष्टता या कृत्रिमता को बचाने का ही प्रयत्न करना कालिदास का काम रहा है। उन्होंने शब्दालङ्कारों की अपेक्षा अर्थालङ्कारों पर विशेष ध्यान दिया है। स्वभावोक्ति मे वे विशेष सिद्धहस्त हैं।

अश्वघोष अलङ्कारों के लिए अलङ्कारों का प्रयोग नहीं करते। परन्तु तो भी रूपक, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुत प्रशंसा आदि साधर्म–मूलक अलङ्कारों के अतिरिक्त यत्र तत्र अनुप्रास तथा यमक जैसे शब्दालङ्कारों का भी प्रयोग मिलता है। सौन्दरनन्द के चतुर्थ सर्ग के चतुर्थ श्लोक में सुन्दरी कैसी थी इसका कितना मनोरम रूपक अश्वघोष की अनोखी सूझ का परिचायक है :—

"साहासहसा नयनद्विरेफा पीनस्तनाभ्युन्नत पद्मकोपा।
भूयोवभापे स्वकुलोदितेन स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाकरेण॥"

वाक्यांशों के प्रयोग की आकृति और कथा की मन्द प्रगति सुनने वालों की उदासीनता में वृद्धि करती है जब कि अश्वघोष के काव्यों मे प्रत्येक पद्य अपनी पृथक सत्ता रखता है। अश्वघोष ने यह दिखलाया है कि पद्यों का महाकाव्य में कैसे प्रयोग होता है? वह साधारण से वाक्यांश को श्लेपात्मक रचना मे प्रस्तुत करता है। उसकी कृति का बाद के कलाकारों

ने अनुकरण किया। कालिदास की रचनाओं में हम देखते हैं कि वह कभी कभी ऐसी कविता करता है जो भावों की एकता होने पर भी अपनी अनुप्रास सम्बन्धी या छंदगत विशेषता रखती है। उनके श्लोकों के अन्त में अनुप्रास नही होते तथा वर्णध्वनि साम्य सारे ही श्लोकों में दिखलाई पड़ता है। अश्वघोष ने अपनी रचना में कुछ कठिनाइयों का सामना किया और श्लोकों के पादों को भिन्न रूप में रखा। उसका वर्णन प्रभावशाली और काव्यों का अविभाज्य अङ्ग है जिससे पाठकों का मन मुख्य घटना से विमुख नहीं होता साथ ही बड़ी प्रवणता के साथ धार्मिक संदेश भी कथा के द्वारा देता है। उसके लिए कथा का गौणविषय है किन्तु धार्मिक सन्देश देना और काव्य कला का प्रदर्शन मुख्य है। अत: अश्वघोष के लिए यह समस्या थी कि वह अपने लक्ष्य की सिद्धि कविता के द्वारा कैसे करे? इसे उसने अपने काव्य में पूर्ण रूपेण निभाया है। जो मार्ग उसने अपनाया वह घटनाओं, कविताओं और प्रयुक्त छन्दों के सामञ्जस्य के साथ है।

यमक अलंकार का उसने विशेषतया प्रयोग किया। पाठक की रुचि कम न होने पावे इसलिए वक्रोक्ति का प्रयोग या व्यङ्गार्थ का बाहुल्य आवश्यक है। वक्रोक्तियों के प्रयोग में उपमा भी स्थान रखती है। ऐसी उपमाओं के प्रयोग में वह समकालीन कवियों में अग्रगण्य हैं। गर्नर के मत में अश्वघोष की कविता मनोवैज्ञानिक भावों को चित्रण करने में अद्वितीय है। जहाँ२ किसी अर्थ या अलंकार की आवृति की गई है वहाँ एक अपने ढंग की नवीनता भी है। बाहर की चेष्टाओं को प्रकाशित करने के लिए ऐसी उपमायें दी गई हैं जिनसे उपदेश और मानसिक भावों का प्रकाश स्पष्ट हो जाता है। बुद्ध ने जब काम के प्रहार को और उसकी सेना को अपने संयम से परास्त किया, उस समय का सारा वर्णन उपदेशात्मक है।

अन्य कवियों की उपमायें या तो केवल शब्द के बल पर हैं, जिनमें कवित्व का भाव बिल्कुल नहीं होता या कवित्वपूर्ण हैं और तदनुकूल शब्दों का चयन नहीं होता। जब वे शब्द-प्रधान होती हैं तो केवल बुद्धि को अपील करती हैं। उसके काव्यों में व्याकरणानुसार शब्दों के प्रयोग में भी मानसिक और ज्ञानपूर्ण आभा लुप्त नहीं होती। रूपक उपमा-मूलक अनेक स्थानों पर दिखलाई पड़ता है। दीपक रूपक और भी उत्तम बना देता है। यमक जो कि एक भिन्न प्रकार का ही है उसकी कवित्व-शक्ति का प्रकाश करता है। यमक का पद के अन्त में प्रयोग या पूर्ण कविता पंक्ति को दुहरा देने से उसके सौन्दर्य को द्विगुणित करता है। सौन्दरनन्द के ८/३२ में ६

शब्दों में से ४ शब्द ऐसे है जो मदा और प्रदा शब्द का वार२ प्रयोग रखतेहैं।

छंदोगत तुलना—अश्वघोष के छन्दोविधानमें एकाध छन्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग कालिदास ने नहीं किया जैसे सुबदना एवं उदंगता। अश्वघोष की रुचि अनुष्टुप की ओर अधिक है। यों तो शिखरिणी, शार्दूल विक्रीड़ित, प्रहर्षिणी, मालिनीं, वंशस्थ, वसंततिलका, उपजाति, तथा पुष्पिताग्रा आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। सर्गों के अन्त में विशेषतः रुचिरा या प्रहर्षिणी का प्रयोग किया है।

उपजाति का प्रयोग और अतिम चरणों के शब्दों की एकता पाठक की उदासीनता को रोकती है अतः अश्वघोष ने एक ही शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग किया जिससे पाठक चमत्कृत हो जाता है। इत्सिङ्ग ने ठीक ही कहा है कि :—

"He clothes manifold ideas in few words, for besides his habitual use of words in two or more meanings, every single word almost in his poems is pregnant and should be given its full value and translation.

कई विद्वानों का मत है कि कालिदास की अत्यन्त प्रिय छन्द मंदा—क्रान्ता के अविष्कारक अश्वघोष ही थे। कुछ भी हो यद्यपि कालिदास में भी अपने काव्यों में उपर्युक्त छन्दों का समुचित निर्देश किया है तो भी अश्वघोष उस प्रारंभिक युग के दृष्टिकोण से कालिदास से पीछे पड़े नहीं दिखाई देते।

व्याकरणगत तुलना—कालिदास के काव्यों में व्याकरणगत अशुद्धियाँ इनी गिनी भी नहीं मिलती। यों तो विधाता से भी सृष्टिनिर्माण में त्रुटि हो जाया करती है। और उसे "एको हि दोषः गुण सन्निपाते, निमज्जतीन्दोः किरणेष्विाङ्कः।" कह कर उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। जहां तक अश्वघोष का प्रश्न है जानस्टन का कथन है कि अश्थघोष ने पाणिनि के धातुपाठ के पूर्व-नियमों का अनुसरण किया है किन्तु कहीं२ वह उन धातुओं के प्रयोगों में भिन्नता कर देता है। बुद्धचरित के ११वें सर्ग के ७० वें श्लोक में "अथेन्द्रवत् दिव्यवंशश्वदर्कवत्" इत्यादि पद्य में "अव" धातु का प्रयोग वार२ एक ही मे किया गया है। सौन्दरनन्द के १२वें सर्ग के १० वें श्लोक में 'अस्ति' शब्द का प्रयोग तीन कालों में हुआ है।

त्रिजुकालेषु सर्वेषु निपातोऽसिरिवस्मृतः ॥ (सौ० १२–१०)

जो पाणिनि के नियम से सिद्ध नही होता। इसी प्रकार उसने मा धातु का प्रयोग "वि" और "उत्" उप सर्ग के विना भी किया हैं।

अश्वघोष ने बुद्ध सम्प्रदाय में प्रयुक्त कुछ साम्प्रदायिक शब्दों के अतिरिक्त सांख्य योग के भी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जो महाभारत के शान्तिपर्व में भी पाये जाते हैं। कतिपय ऐसी संज्ञायें भी हैं जो महाभारत और बुद्धचरित में एक सी हैं जैसे संक्रन्दन, माया, अम्बर, अवसङ्ग, अर्थ-वत्, दृप्ति, बल्ली, आदि कुछ शब्द ऐसे हैं जो अपने ऐच्छिक अर्थ में प्रयुक्त किये गये हैं। वाक्यांश श्लोकों में सुन्दरता से रखे गये हैं। एक क्रिया से अनेक कर्त्ताओं को, एक कर्ता को अनेक क्रियाओं से अनेक स्थानों पर प्रदर्शित किया गया है। कहीं कहीं पर केवल क्रियाओं से ही पूरा श्लोक बना डाला गया।

अश्वघोष के Phrase, idioms, विचार और भाव भी अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होते हैं जब कि हम उनकी तुलना महाभारत और रामायण के भावों और वाक्यों से करते हैं। अश्वघोष ने द्विकर्मक धातुओं का अधिक प्रयोग किया है, क्रियाओं के साथ 'प्रति' का प्रयोग अधिक है। अधिकरण कारक विधिलिंग के साथ अधिक प्रयुक्त हैं। "क्त" प्रत्यान्त शब्द विशेषण के रूप में अधिक आए हैं। कर्म प्रत्यान्त धातुएँ भी विधिलिंग में विशेपरूप से प्रयुक्त हैं। उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि अश्वघोष को व्याकरण पर अधिकार था और इसीलिए उसने अपनी प्रतिभा के आधार पर अपने काव्यों में नवीनता की सृष्टि की है।

भाषा एवं शैलीगत तुलना:—अश्वघोष की भाषा भव्य तथा सरस है। चार या पाँच शब्दों से अधिक लम्बे समास नहीं मिलते। अश्वघोष की शैली प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति से युक्त है जिसका विशद विवरण पूर्व-पृष्टों में किया जा चुहै। इस दृष्टि कोण से उनकी शैली कालिदास के समीप है। अश्वघोष की लेखन शैली की एक विशेपता यह है कि उसने कथा शैली में साहित्य शैली को मिलाकर कठिनता उत्पन्न कर दी है जिससे वह प्रचारक, कवि, एवं विद्वान् सिद्ध होता है। यद्यपि अश्वघोष में अपनी मौलिकता थी तो भी उनकी कृतियों में काव्य शैली का प्रचुरतम रूप प्रस्फुटित नहीं हो सका जो कि कालिदास की कृतियों में उपलब्ध होता है। कालिदास की भाँति ही अश्वघोष ने भी अपना विषय भले ही प्राचीन आख्यानों से ले लिया है परन्तु अपनी सृष्टि वैचित्र्य से नीरस कथानक भी सुरुचिपूर्ण और मनोमुग्धकारी बना दिया है। कालिदास की तो यह सर्वतोमुखी प्रतिभा महाकाव्य, गीतिकाव्य एवं नाट्य रचना-सभी क्षेत्र में हैं।

सम्भव है शेक्सपीयर-नाट्य रचना एवं चरित्र चित्रण में कालिदास से कुछ बढ़ गये हों पर भारतीय आदर्श के अनुसार काव्य के आत्मभूत रस की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति कालिदास के काव्यों में हुई वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इस क्षेत्र में अश्वघोष अवश्य ही कुछ पीछे रह गये है। भाव चित्रण में कालिदास व्यञ्जनावृत्ति का आश्रय लेते हैं। जब अङ्गिरा ऋषि गिरिराज से पार्वती–परिणय के लिए वागदान लेने आये उस समय की पार्वती की सदृश लज्जाशीलता एवं आंतरिक प्रेम गायन की प्रवृत्ति की कितनी रुचिर व्यञ्जना निम्न पंक्तियों में उदभूत हुई है :—

"एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती॥"

कोमल एवं सुकुमार भावों की व्यञ्जना में भी कालिदास अद्वितीय हैं इसीलिए "प्रसन्न राघव" के कर्ता कालिदास को "कविता कामिनी का विलास" कहते हैं। श्रृंगार रस के सम्भोग एवं विप्रलम्भ इन दोनों पक्षों का जैसा सूक्ष्म एवं मार्मिक उद्घाटन कालिदास ने किया वैसा अन्यत्र कम मिलता है, परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि अश्वघोष के श्रृंगार के ये दोनों पक्ष उनके काव्यों में अछूते रह गये हों। यदि वास्तविकता के दृष्टि कोण से देखा जाय तो अश्वघोष के उस काव्य के प्रारम्भिक युग मे इस रस का द्विपक्षीय वर्णन उसकी काव्य प्रतिभा की मौलिकता का परिचायक ही सिद्ध होगा।

नाटककार के दृष्टिकोण से यद्यपि कालिदास की तुलना में अश्वघोष बराबरी नहीं कर सकते तो भी अश्वघोष को हम नाटक का उद्भावन तो मान ही सकते हैं क्योंकि उस समय तक रूपक नाटकों की प्रथा का जन्म भी नहीं हुआ था। यद्यपि "अभिज्ञान शाकुन्तल" नाटकों की जान है तो अश्वघोष के नाटकावशेष जिन की खोज ल्युडर्स महोदय ने की थी संस्कृत साहित्य के नाटक जगत् में एक प्रकाश स्तम्भ का कार्य करते हैं जिनके सहारे ही नाट्यक ग्रन्थ का पश्चात्कालीन निर्माण हुआ।

कथा–वस्तु संविधान के दृष्टिकोण से अश्वघोष एवं कालिदास में जो भेद है वह यह है कि कालिदास का वस्तु-संविधान अत्यधिक स्वाभाविक प्रवाहमय, सरस, तथा प्रभावोत्पादक है; कालिदास का कवि अश्वघोष की तरह दार्शनिक सेतु बांधकर कथा सरिता के प्रवाह को यत्र तत्र रोकता नहीं है।

यद्यपि अश्वघोष ने श्रृंगार के दोनों पक्षों (सम्भोग-विप्रलम्भ) का

मनोरम वर्णन किया है तो भी जहां वे शान्त रस के प्रवाह में बहते हैं तो नारी उनके लिए जर्जरभाण्ड के समान दूषित कलुषित एवं कुत्प हो जाती है। परन्तु कालिदास नारी को सदैव सौंदर्य भरे नेत्रों से ही देखते हैं यहां तक कि वे प्रकृति में भी नारी रूप की कल्पना करके मानवीकरण की जीती जागती प्रतिमूर्ति खड़ी कर देते हैं। कालिदास की दृष्टि से सौंदर्य को अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं। वास्तविक सौन्दर्य सभी अवस्थाओं में मनोरम एवं रमणीय होता है।

"अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृतिविशेषणाम्"। उसकी चारुता 'अक्लिष्टकान्तं, होने में निहित है शकुन्तला का सौन्दर्य देखिये :—

"इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी,
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ॥"

परन्तु दूसरी ओर कालिदास के अनुसार सुन्दर शरीर का सौन्दर्य ही स्त्रियों का परम गौरव एवं चरम सौन्दर्य नहीं। इसीलिए पार्वती ने मन ही मन अपने रूप की निन्दा की :-

'निनिन्दरूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेषु सौभाग्य फलाहि चारुता"

कालिदास ने सौन्दर्य की परिणति प्रेम में मानी है क्योंकि—"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता।" उन्होंने प्रेम का आदर्श बहुत ऊंचा माना है। काम का कर्तव्य से विरोध नहीं होना चाहिये—यह उनकी सारी कृतियां घोषित कर रहा है। तभी तो शिव का विरोधी काम भस्मीभूत कर दिया जाता है। कालिदास ने प्रेम का मूलभूत कारण जन्मान्तर माना है क्योंकि परित्यक्ता सीता कहती है :—

भूयो यथा मे जन्मान्तरेऽपि,
त्वमेव भर्ता न च विप्रयोग:

प्रेमी एवं प्रेमिका के मधुर सम्बन्ध का कालिदास ने बड़ी सहृदयता के साथ चित्रण किया है। परन्तु अश्वघोष के प्रेमी प्रेमिका भी चकवा चकवे की भांति एक दूसरे से अलग नहीं होना चाहते। प्रिया के विरह से बढ़कर प्रियतम के लिये और कोई उग्रतर पुर्विपाक नहीं हो सकता।

कालिदास की स्त्री में जब विरहगत प्रेम की तड़पन उठती है तो वह मेघ आदि को दूत बनाकर उससे शब्दों द्वारा नहीं बल्कि हाव भावों

द्वारा व्यक्त करती है जबकि अश्वघोष की स्त्री विरह में चिल्लाती है, गिर पड़ती है और बेहोश हो जाती है। वह प्रेम के वश होकर स्वामी के हित को भी भूल जाती है। जिस प्रेम में कोई बन्धन नहीं, कोई नियम नहीं, जो प्रेम अकस्मात नर नारी को मोहित करके संयम-दुर्ग के भग्न प्राचीर के ऊपर जय पताका को गाड़ता है, उस प्रेम की शक्ति को कालिदास ने स्वीकार किया है परन्तु उसके हाथ आत्म समर्पण नहीं कर दिया। उस प्रेम को उन्होंने स्वामि-शाप से खण्डित, ऋषि शाप से परिहित, और देव रोष से भस्म कर डाला है।

संक्षेपत: हमें यही कहना पड़ता है कि कालिदास एक रसवादी कवि हैं जबकि अश्वघोष का स्थान अपनी सर्व प्रथम रूढियों के कारण महत्वपूर्ण है। इनकी दो रूढियों का संकेत कर देना पर्याप्त होगा। बुद्ध चरित के तीसरे सर्ग में बन विहार के लिए जाते हुए राजकुमार को देखने के लिए लालायित ललनाओं के वर्णन की परम्परा सर्वप्रथम यहीं मिलती हैं। यही रूढ़ि हमें रघुवंश के सप्तम सर्ग में, कुमारसम्भव के भी सप्तम सर्ग में तथा माघ के १३वें एवं श्री हर्ष के १६वें सर्ग में प्राप्त होती है। दूसरी परम्परा वृक्षों के द्वारा वस्त्राभरणों का देना है। जो कलिदास की अभिज्ञान शाकुन्तल में है वह पहले ही अश्वघोष के काव्य सौन्दरनन्द में देखिये :—

"हरिन् मणीनुत्तम कुण्डलानि
केयूरवर्ष्याण्यथ नूपुराणि।
एवं विधान्याभरणानि यत्र
स्वर्गानुरूपाणि फलन्ति वृक्षाः ॥"

इससे स्पष्ट है कालिदास भी अश्वघोष के ऋणी हैं।

काव्य शैली विवेचन

अश्वघोष की काव्य रचना शैली का अध्ययन करने के लिए चार बातें विचारणीय हैं। १–शैलीगत विशेषतायें, २–उपमान योजना, ३—रस, अलंकार और छन्द ४–भाषा।

कवि अपनी रचना शैली के द्वारा ही लोक रुचि को आकर्षित करता है तथा इसी से उसकी कला का उदात्त स्वरूप प्रकट होता है। अश्वघोष के व्यक्तित्व में कवि तथा दार्शनिक दोनों का ही समन्वय है। परन्तु शैली के विषय में वे जानते थे कि रुचिर स्वर वर्णपदा रसभाव वती कविता ही जगत् को आह्लादित करती है। अतः उन्होंने सरल शैली का आश्रय लिया।

कोमल पदावली एवं भावमय भाषा का व्यवहार अश्वघोष की शैली की प्रमुख विशेषता है। वैदर्भी शैली का लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार किया है।

"माधुर्यव्यञ्जकैवर्णैं रचना ललितात्मिका,
आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ॥"

दण्डी के अनुसार कालिदास ने वैदर्भी शैली की उद्‌भावना की। "तेनेदं वर्त्म वैदर्भी कालिदासेन शोधितम्", इसके "शोधितम् पद के अनुसार अश्वघोष ही वैदर्भी रीति के संस्थापक थे। उन्होने वाणी को अमृत के समान कहकर मानों विल्हण के:–'अनभ्रवृष्टिःश्रवणामृतस्य सरस्वती विभ्रम जन्म भूमिः। वैदर्भी रीतिः कृतिनामुपेति सौभाग्य लाभ प्रतिभूःपदानाम् ॥" इस कथन द्वारा सरस मार्ग प्रिय वैदर्भ मार्ग की ही पुष्टि की है।

उनके काव्यों मे ललित पदावली, सुकुमार भाव अविकटाक्षरकप्रधान शैली का विधान सर्वत्र पाया जाता है। वैदर्भी शैली का सौन्दरनन्द मे उदाहरण देखिये :—

"सा हास हंसा नयनद्विरेफा पीनस्तनात्युन्नत पद्‌मकोशा।
भूयो वभापे स्वकुलोदितेन स्त्री पद्मिनी नन्द दिवाकरेण ॥' ४/४

उपर्युक्त श्लोक में काव्य का सरल प्रवाह दर्शनीय है, जो कि उनके काव्य की मौलिक शैली है। उनकी शैली मे चित्राङ्कन विधान की प्रवृत्ति

पाई जाती है। जैसे रोगी का वर्णन करते हुए बुद्ध चरित में वे कहते हैं—

स्थूलोदरः श्वासचलच्छरीरः स्रस्तांसबाहु कृशपाण्डुगात्रः।
अम्बेति वाचं करुणं ब्रुवाणः परं समाश्रित्य नरः क एषः। ३/४१

इस प्रकार के कल्पना चित्रों में एक कलाकार विविध रंग भर कर चित्रों का रूप प्रदान कर सकता है।

अश्वघोष की शैली की अन्य विशेषता रूपकात्मकता की है। अश्वघोष ने अलङ्कारों के द्वारा वस्तुतः चमत्कार का ही कार्य किया है। नन्द व भिक्षु के वार्तालाप में यमक का प्रयोग देखिये :—

यस्यादन्यायतस्ते च कंचिन्नाचीकरन्करम्।
तस्मादल्पेनकालेन वत्तदापूपुरन्पुरम्॥ १/५६

अश्वघोषकी शैली का एक अन्य प्रमुख गुण ध्वन्यात्मकता है। वे प्रायः एक सी ध्वनि वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं। यह ध्वनि-साम्य संज्ञा तथा क्रिया दोनों में ही हुआ है।

उनके काव्यों में ऐसे भी स्थल हैं जहाँ एक ही शब्द को लेकर पूर्ण पद्य ग्रथित है। सौन्दरनन्द की सुन्दरी का वर्णन कवि ने कितनी विदग्धता से किया है।

सा पद्मराग वसन वसाना, पद्मानना पद्मदलायताक्षी।
पद्मा विपद्मा पतितेव लक्ष्मीः शुशोप—पद्मस्रगिवातपेन॥

उनकी शैली वर्णनात्मक, उपदेशात्मक, दृष्टान्त प्रधान तथा तार्किक प्रतिभा के उन्मेष से युक्त है। शैलीगत प्रमुख विशेषताओं के अतिरिक्त कई अन्य सामान्य विशेषतायें हैं। वे कहीं २ संख्यात्मक शैली का प्रयोग करते हैं। सौन्दरनन्द के १७वें सर्ग के ६०वें श्लोक मे कवि कहता है :—

"इति त्रिवेग त्रिझप त्रिवीचयेकाम्भस पञ्चरम द्विकूलम्।
द्विग्राहमष्टाङ्गवता प्लवेन दुःखार्णव दुस्तरयुत्ततार॥" १७/६०

इसमे अर्थों की स्पष्ट अभिव्यन्जना नहीं है। अतः सरल शैली का यह दोष ही हैं किन्तु 'एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः' के समान नगण्य है।

शब्दों की पुनरावृति तो उनकी शैली का सहज गुण है।

बौद्ध सिद्धान्त निरूपण

अश्वघोष में कवि और दार्शनिक दोनों का समवेत स्वरूप मुखरित होता है। अश्वघोष ने अपने काव्यों द्वारा जीवन–दर्शन को बौद्ध–दर्शन की पीठिका पर व्यवस्थित किया है। इसके साथ ही भारतीय दर्शन की साँख्य-योग की सरणि में तथा बौद्ध दर्शन में पर्याप्त साम्य प्राप्त होता है तथा अश्वघोष ने सांख्य का विस्तार से वर्णन किया है।

अश्वघोष के काव्यों में वैदिक परिज्ञानात्मक स्थलों के साथ ही औपनिषदिक ज्ञान का भी परिस्फुरण मिलता है जो न केवल अश्वघोष अपितु बौद्ध दर्शन के विकास के मूल में समाहित है। त्याग ज्ञानादि तथा वैराग्य का जो निरूपण बौद्ध दर्शन में हुआ है वह उपनिषद् काल में ही स्थिर हो चुका था। वृहदारण्यक का यह कथन "ब्राह्मण: पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यां चरन्ति। अश्वघोष ने उपनिषद् दर्शन से प्रादुर्भूत सॉख्ययोग दर्शनों का बुद्धचरितऔर सौन्दरनन्द मे सम्यग प्रतिपादन किया है। अश्वघोष ने सौन्दरनन्दमें इन्ही वाक्यों की पुनरावृत्ति की है :—

प्रवृति दु:खस्य च तस्य लोके,
तृष्णादयो दोषगुणा निमित्तम्।
नैवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो,
नापि स्वभावो न विधिर्यदच्छा ॥

कर्म के अनुसार आर्य-सत्य-चतुष्टय तथा प्रतीत्य-समुत्पाद को लेकर जहां एक ओर बौद्ध दर्शन आयुर्वेद और योग के समीप है वहीं प्रतीत्य-समुत्पाद तथा सांख्य के प्रत्यय सर्ग मे भी अत्यधिक अनुरूपता है। सांख्य तथा बौद्ध दर्शन दोनों में सुख-दुख विवेचन की समान प्रक्रिया है अत: दोनो का साम्य स्वत: सिद्ध है।

भगवद्गीता ने अश्वघोष के दार्शनिक स्वरूप को प्रभावित किया है ऐसा जौनस्टन और लाहा दोनों विद्वान स्वीकार करते हैं। बुद्ध चरित में अश्वघोष मे 'पञ्चपर्वा अविद्या' की चर्चा की है जो सांख्याचार विद्वत् का सूत्र कहा जाता है। अश्वघोष ने अराड के द्वारा बुद्ध को सांख्य का उपदेश दिलाया है परन्तु वे कपिल का स्मरण करते हैं।

बौद्ध दर्शन और योग में पर्याप्त साम्य है, न केवल समान शब्दों का अपितु विचारों का भी ।

ध्यान की प्रारम्भिक अवस्था में योगी किस प्रकार आचरण करें यह सौन्दरनन्द में देखिये :—

नासाग्रे वा ललाटे वा भ्रुवोरुत्तर एव वा ।
कुर्वीथाश्चपलं चित्तमालम्बनपरायणम् ॥

चित्त के एकाग्र हो जाने पर योगी चार आर्य सत्यों का ज्ञान करता है जो कि सौन्दरनन्द १६/४ मे अश्वघोष ने बताये हैं ।

बाधात्मकं दुःखमिदं प्रसक्तं दुःखस्य हेतुः प्रभवात्मकोऽयम् ।
दुःखक्षयो निःसरणात्मकोऽयं त्राणात्मकोऽयं प्रशमाय मार्गः ॥

इस स्थिति में पहुंच कर साधक जन्म मरण चक्र से मुक्त हो जाता है। अश्वघोष ने बुद्ध चरित्र के १२वें सर्ग में योगी की इन क्रियाओं का वर्णन किया है। अर्हत्व प्राप्ति का साधन सौन्दरनन्द में बुद्ध द्वारा नन्द को दिए गए उपदेश मे दिखाई पड़ता है।

बौद्ध दर्शन की अन्य विशेषता, जिसका पालन अश्वघोष ने किया, शुद्ध आचार तथा भौतिक आदर्शवाद की स्थापना है। डा० जॉनस्टन अश्वघोष को हीनयान का अनुयायी मानते हुये भी उन्हें बहुश्रुतिक और कुकूलिक मानते हैं। डा० बेनीमाधव बरुआ उन्हें सौत्रान्तिक मानते थे। डा० हर प्रसाद शास्त्री ने उन्हें योगाचार का अनुयायी माना है। विधुशेखर भट्टाचार्य उन्हे माध्यमिक सिद्ध करते हैं। परन्तु अश्वघोष हीनयानी थे। इसे सभी भारतीय और पाश्चात्य विद्वान् स्वीकार करते हैं। क्योंकि उन्होंने अपने काव्यों में उन आदर्शों की स्थापना की जिससे उन्हें हीनयान मतानुयायी कहा जा सकता है। डा० विमला चरण लाहा तथा चींनी परम्परा इसका अनुमोदन करती है। इसके अतिरिक्त बहुश्रुतिक, कौकुलिक महासंघीय होने का भी समाहार सर्वास्तिवाद में हो जाता है।

अन्त मे अश्वघोष ने पाठकों को स्वतः ही सौन्दरनन्द में यह बता दिया है कि :—

"इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः ।

श्लोक में है तथा बुद्धचरित के १८वें सर्ग में इसकी विस्तृत व्याख्या है।

> प्रवृत्तिदुखस्य च तस्य लोके तृष्णादयो दोषगणा निमित्तम।
> नैवेश्वरो न प्रकृतिर्न कालो नापि स्वभावो न विधिर्यदृच्छा ॥ १६—१७।

अश्वघोप के अध्ययन कर्ताओं में चीनी भाषा से अंग्रेजी में अनुवाद करने का श्रेय samuel Beal सेमुअल बील को हैं। इसके वाद संस्कृत भाग का सम्पादन श्री (Cowell) कावेल ने किया।

बुद्धचरित की भूमिका में उसके धार्मिक विचार प्रखर-प्रतिभा और कवियों मे उच्चस्थान की चर्चा की है। सन् १६२२ में सौन्दरनन्द का बंगला संस्करण विमल चरण लाहा ने निकाला। सैमुअल बील से लेकर आज तक के विपयक अश्वघोप अध्ययन-कर्त्ताओं में बोहितलिङ्ग (Bohitt Ling) का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। भारतीय विद्वानों में जोगलेकर नन्दर्गांकर, भण्डारी, कुमारसेन का नाम गिनाया जा सकता है।

अश्वघोप बुद्ध मन्दिर में रहता था और उसकी वाणी में इतना प्रभाव था कि वह सभा को रूला देता था। उसकी वुद्धि सर्वतोमुखी थी। उसे बोधिसत्व अश्वघोप भी कहा जाता था। कीथ का कथन है कि प्रज्ञा-पारमिता के सिद्धान्त का ज्ञाता अश्वघोपही था। (Winternitz)विन्टरनिटज के अनुसार महायान श्रद्धोत्पाद का रचयिता 'बुद्ध-चरित' के रचयिता से भिन्न है जो ५वीं शती में उत्पन्न हुआ था।

अश्वघोप का जन्म स्थान भारत है। इस विषय में नागार्जुन और तारानाथ का एक ही मत है। केवल कुछ उसे वाराणसी का और कुछ उसे दक्षिण भारत का बताते हैं। कुछ व्यक्ति उसे बौद्ध सिद्धान्त का सर्वश्रेष्ठ व्याख्याकार मानते हुये अश्वघोप की प्रतिभा को सर्वोत्कृष्ट बताते हैं। वह तुखारा नाम के उत्तर भारत के स्थान के राजा Chu-tan-chi-nicah का समकालीन था। जिसका कि 'चन्दन कनिष्क' यह संस्कृत नामकरण हुआ।

अश्वघोष के माता पिता के विषय में अनेक मत हैं। कोई कोइ उसे लोक एवं घोणा का पुत्र कहते हैं। तारानाथ के मत में वह ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए संघ गुह्य का पुत्र था। जिसका विवाह खोरता के व्यापारी की सबसे छोटी कन्या से हुआ था। अश्वघोप ने तिरहुति, कामरूप, गौड़देश और उड़ीसा की यात्रा की। जहाँ अपने प्रतिवादियों को अपनी अद्भुत तर्कपूर्ण युक्तियों से हराया। 'सौन्दरनन्द के अनुसार वह साकेतवासिनी सुवर्णाक्षी का पुत्र था।

स्थविर अश्वघोष और उसका गुरु स्थविरपार्श्व दोनों क्रम से मध्य भारत और उत्तर भारत के निवासी थे। वह हीनयान का अनुयायी था। मिलिन्द पह्नो (मिलिन्द प्रश्न) में स्थविर अश्वघोष के सिद्धान्तों का वर्णन है। यह ग्रन्थ विन्ध्य प्रदेश में बनाया गया। कवि अश्वघोष साँख्य सिद्धान्त का अनुयायी था।

भले ही वह बोधिसत्व अश्वघोष या स्थविराश्वघोष था पर इस विषय में सन्देह नहीं कि वह ब्राह्मण प्रभाव एवं परम्परा से निर्मुक्त था। उसने बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् अपना एक स्थान प्राप्त किया तथा 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरनन्द' का प्रणेता अश्वघोष ब्राह्मण जाति में जन्म लेकर बुद्धधर्म में दीक्षा लेने से ब्रह्म विद्या में पारङ्गत हुआ। बुद्धधर्म की दीक्षा के पश्चात् उसने बुद्ध धर्म के ग्रन्थों का अध्ययन किया। वह धर्मगुप्त या सर्वास्तिवाद का अनुयायी था तथा उसने हीनयान का सबसे पूर्ण योग्यता के साथ प्रतिपादन किया है। उसके लेखों से विदित होता है कि वह संस्कृत के व्याकरण, अलंकार शास्त्र, छन्दःशास्त्र, नाट्य शास्त्र, कामशास्त्र, राजधर्म और उपनिषदों का ज्ञाता था। उसने जिस मध्यदेश का वर्णन किया है वह बुद्ध सम्बन्धी साहित्य से भिन्न है और बौधायन, पतञ्जलि के आर्यावर्त के वर्णन से मिलता जुलता है।

उसने 'रागस्वर' नामक एक ग्रन्थ बनाया जो हृदयस्पर्शी और मधुरतापूर्ण गाने से पाटलिपुत्र के निवासियों में वीरत्व-भावना जगाता था तथा लङ्का की पनिहारियों के गाने से मिलता था। कुछ लोग मातृचेट और अश्वघोष को एक मानते हैं। क्योंकि इन दोनों का वर्णन भगवान् तथागत की विभूतियों के गाने से परिपूर्ण है। नागार्जुन ने एक ऐसा गाना बनाया था। जो सारे भारतवर्ष में तब गाया जाता था, जब कि बौद्ध लोग यात्रा को निकलते थे।

वज्रसूची नाम की रचना जिसमें ब्राह्मणों के जातिवाद का खण्डन किया गया है अश्वघोष कृत कही जाती है। कवीन्द्र-वचन समुच्चय में कुछ ऐसी कवितायें मिलती हैं जो अश्वघोष की ही कही जा सकती हैं किन्तु "सुभाषितावली" में अश्वघोष के नाम से लिखी गई कवितायें उसकी ही हैं इसमें सन्देह है।

'तिब्बत' की परम्परानुसार कुछ विद्वान धार्मिक सुभूति तथा अश्वघोष को एक मानते हैं। सुभूति ने "सतिकारिका" लिखी जिसका पालिभाषा का नाम 'पञ्चगतिदीपन' है। स्टेनकोनो (stenkonow) का

कथन है कि अश्वघोष नाटक लिखने में बड़ा दक्ष था। इससे सिद्ध है कि यह नाटक 'शारिपुत्रकरण' जिसका पूरा नाम "शारद्वतीपुत्र प्रकरण" है और जिसमें ६ अङ्क हैं, अश्वघोष की रचना है क्योंकि उसके बनाये बुद्धचरित और सूत्रालंकार में "शारिपुत्रप्रकरण" का एक श्लोक ज्यों का त्यों पाया जाता है।

अश्वघोष समकालीन मत और व्यक्ति

अश्वघोष ने अपनी जीवनी नहीं लिखी। उसे साकेत का निवासी, सुवर्णाक्षी का पुत्र महाकवि, सफल अध्यापक और भिक्षु कहा गया है। सुवर्णाक्षी यह संज्ञा गोत्र नाम पर पड़ी है। इस प्रकार की संज्ञायें ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों में मातृपक्ष और पितृपक्ष से चलती थी जब कि बहु-विवाह प्रथा थी। वह ब्राह्मण जाति का भिक्षु माना गया है।

अश्वघोष की परम्परा में थेर सम्प्रदाय का जन्म हुआ जिसे अश्वगुप्त के नाम से भी पुकारते हैं। बक्ट्रिया के राजा मिलिन्द या मलिन्दर ने बौद्ध धर्म में दीक्षा ली और "मिलिन्दप्रश्न" नामक ग्रन्थ प्राकृत में बनाया। थेर (स्थविर) धर्मकीर्ति भी सूत्र-पिटक का विद्वान था तथा विन्ध्य की घाटी में रहता था। वह संघ का अधिपति भी था, अतएव उसे युगन्धर में होने वाली सभा में आमंत्रित किया गया था।

अश्वघोष हीनयान का तो अनुयायी था ही किन्तु वह कौकुलिक या बहुश्रुति नामक अवान्तर धर्म का अनुयायी था। उसका सिद्धान्त था कि सारे ही धर्म कुकूल अर्थात तपस्या से बनते हैं। बहुश्रुतिक लोग सर्वास्तिवाद के सिद्धान्त को मानते थे धर्मगुप्त का मत भी सर्वास्तिवाद का समर्थक रहा है।

अश्वघोष के काव्यों से विदित होता है कि वह ऋग्वेद, रामायण और उपनिषद् का ज्ञाता था विशेषतया श्वेताश्वरोपनिषद का विशेष ज्ञान उसके ग्रंथों से प्रतीत होता है। उसने ममता के पुत्र, अर्थपति, अङ्गिरा, लोपामुद्रा, रोहणी, अगस्त्य, सत्ययातु, वशिष्ट, अम्बरीष, पुरुषों का वर्णन किया है। काशी, कुन्ती, माद्री शान्ता, दीर्घा, तपा, मेनका, वेणुका, प्रांशु मान्धाता शान्तनु, प्रताप, जनक, उग्रायुध, तार्क्ष्य, भीष्म तथा वृद्ध इत्यादि की भी चर्चा की है। साकेत निवासी होने के कारण अश्वघोष रामायण

से परिचित था। बुद्धचरित के १—४३ में उसने वाल्मीकि को आदि कवि कहा है। राम का वन-गमन और सारथि का लौटना, दोनों बुद्धचरित के सिद्धार्थ के गृहत्याग और चण्डक नाम के सारथि के कपिलवस्तु को वापस आने के वर्णन से मिलते—जुलते है।

गौतम और दोर्घतया ऋषि का वर्णन महाभारत के सभापर्व के २२वें अध्याय से साम्य रखता है। महाभारत के सभापर्व और राजगृह का वर्णन एक सा है। इस प्रकार बौद्ध-सिद्धान्तों को छोड़कर वर्णनों में बुद्धचरित और रामायण में बहुत साम्य हैं। राजा के कर्तव्य, सेना के विशेष अंग, अप्रिय सत्य का कथन, प्रतिज्ञाभंग में चरित्र-दूषण, वियोग का दुःख और संसार की अनित्यता में अश्वघोष और रामायण के वर्णनों में विम्ब प्रतिबिम्ब भाव है।

बुद्धचरित के सातवें सर्ग के १३ वें श्लोक में जो आश्रम का वर्णन है उसकी वाल्मीकि रामायण के तीसरे काण्ड के ११वें अध्याय के ५० से ५२ श्लोक तक के आश्रम वर्णन से समता प्रतीत होती है :—

अभ्युद्धतप्रज्वलिताग्निहोत्रं कृताभिषेकर्षिजनावकीर्णम्।
जाप्यस्वनाकूजितदेवकोष्ठं धर्मस्य कर्मान्तमिव प्रवृत्तम्॥७—१३।

इसी प्रकार रामायण में अगस्त्य मुनि के आश्रम का भी वर्णन किया गया है। रा० ३।११।८१,८२ मे,

प्राज्यधूमाकुलवनश्चीरमालापरिष्कृतः।
प्रशान्तमृगयूथश्च नानाशकुनिनादितः॥
निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया।
दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा॥

यशोधरा बुद्धचरित के आठवें सर्ग में, और सुन्दरी 'सौन्दरनन्द' के ६ठे सर्ग के १३ से २४ वें श्लोक तक जिस प्रकार विलाप करती है।

अभागिनी यग्रहमायतेक्षणं शुचिस्मितं भर्तुरुदीक्षितुं मुखम्
न मन्दभाग्योऽर्हति राहुलोऽप्ययं कदाचिदङ्के परिवर्तितुं पितुः॥बुद्धचरित८-६७

एष्याम्यनाश्यानविशेषकायां त्वयीति कृत्वा मयि तां प्रतिज्ञाम्
कस्मान्नु हेतोर्दयितप्रतिज्ञः सोऽद्य प्रियो मे वितथप्रतिज्ञः॥१३

आर्यस्य साधोः करुणात्मकस्य मन्नित्यभीरोरतिदक्षिणस्य।
कुतो विकारोऽयमभूतपूर्वः स्वेनापरागेण ममापचारात्॥१४

रतिप्रियस्य प्रियवर्तिनो मे प्रियस्य नूनं हृदयं विरक्तम् ।
तथापि रागो यदि तस्य हि स्यान् मच्चित्तरक्षी न स नागतः स्यात् ॥१५
रूपेण भावेन च मद्विशिष्टा प्रियेण दृष्टा नियतं ततोऽन्या ।
तथा हि कृत्वा मयि मोघसान्त्वं लग्ना सती मामगमद्विहाय ॥१६
भक्तिं स बुद्धं प्रति यामवोचत्तस्य प्रयातुं मयि सोऽपदेशः ।
मुनौ प्रसादो यदि तस्य हि स्यान्मृत्योरिवोग्रादनृताद्विभीयात् ॥१७
सेवार्थमादर्शनमन्धचित्तो विभूषयन्त्या मम धारयित्वा ।
विभर्ति सोऽन्यस्य जनस्य तं चेन्नमोऽस्तु तस्मै चलसौहृदाय ॥१८
नेच्छन्ति याः शोकमवाप्तुमेवं श्रद्धातुमर्हन्ति न ता नराणाम् ।
क्व चानुवृत्तिर्मयि सास्य पूर्वं त्यागः क्व चायं जनवत्क्षणेन ॥१९

इत्येवमादि प्रियविप्रयुक्ता प्रियेऽन्यदाशङ्क्य च सा जगाद ।
सम्भ्रान्तमारुह्य च तद्विमानं तां स्त्री सबाष्पा गिरमित्युवाच ॥२०

युवापि तावत्प्रियदर्शनोऽपि सौभाग्यभाग्याभिजनान्वितोऽपि ।
यस्त्वां प्रियो नाभ्यचरत्कदाचित्तमन्यथा यास्यतिकातरासि ॥२१

मा स्वामिनं स्वामिनि दोषतो गाः प्रियं प्रियार्हं प्रियकारिणं तम् ।
न स त्वदन्यां प्रमदामवैति स्वचक्रवाक्या इव चक्रवाकः ॥२२

स तु त्वदर्थं गृहवासमीप्सन् जिजीविषुस्त्वत्परितोषहेतोः ।
भ्रात्रा किलार्येण तथागतेन प्रव्राजितो नेत्रजलार्द्रवक्त्रः ॥२३

श्रुत्वा ततो भर्तरि तां प्रवृत्तिं सवेपथुः सा सहसोत्पपात ।
प्रगृह्य बाहू विरुराव चोच्चैर्हृदीव दिग्धाभिहता करेणुः ॥२४

यह रामायण के दूसरे काण्ड के ५९वें श्लोक से मिलता है:—

न सुवर्णेन मे ह्यर्थो न रत्नैर्न च भोजनैः ।
एष मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते ॥
(अयोध्याकाण्ड नवम् सर्ग—५९ श्लोक)

इस प्रकार इन दोनों काव्यों पर रामायण की बड़ी छाप है।

अश्वघोष ने राजनीति के लिए "राजशास्त्र" शब्द का प्रयोग किया है। राम के वन गमन के अवसर पर प्राकृतिक पदार्थों के विलाप के अवसर पर रामायण काण्ड २ सर्ग ५९, श्लोक ७, ८, ९ में कहा गया है।

लीनपुष्करपत्राश्च नद्यश्च कलुषोदकाः ।
सन्तप्तपद्माः पद्मिन्यो लीनमीनविहंगमाः ॥

जलजानि च पुष्पाणि माल्यानि स्थलजानि च ।
नाति भान्त्यल्पगन्धीनि फलानि च यथापुरम् ॥
अत्रोद्यानानि शून्यानि प्रलीनविहगानि च ।
न चाभिरामानारामान्पश्यामि मनुजर्षभ ॥

इस प्रकार के भाव जहाँ कि पशु पक्षी मानव के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं, रामायण में ही प्राप्त होते हैं। सीता के अपहरण के अवसर पर विभिन्न पशु पक्षी एवं प्राकृतिक पदार्थों का रामायण ३/५२/३५, ३६, ३७ में इस प्रकार वर्णन किया गया है :—

नलिन्यो ध्वस्तकमलास्त्रस्तमीनजलेचराः ।
सखीमिव गतोत्साहां शोचन्तीव स्म मैथिलीम् ॥
समन्ताद भिसंपत्य सिंहव्याघ्रमृगद्विजाः ।
अन्वधावंस्तदा रोपात्सीताच्छायानुगामिनः ॥
जलप्रपातास्रमुखाः शृङ्गैरुच्छ्रितबाहुभिः ।
सीतायां ह्रियमाणायां विक्रोशन्तीव पर्वताः ॥

प्राचीन काल के कुछ ऐसे कवि हैं जिनको लोग भूल गए हैं उन कवियों में ऋग्वेद के ऋषि भी हैं जिन्हें 'सद्विप्र' के नाम से पुकारते हैं।

कवि और ऋषि में महान अन्तर है। कवि द्रष्टा नहीं होता किन्तु अश्वघोष कवि को भी ऋषि मानता है। जैसा कि बुद्ध ने नन्द से कहा है कि वह मनुष्य सर्वोत्तम माना जाता है जो इच्छाओं की पूर्ति कर अपने कष्टों का ध्यान न करके परहितार्थ स्वयं को प्रेरित करता है।

कविता के भेद

बुद्ध ने कवियों के चार भेद किये हैं—चिन्ता–कवि, श्रुत–कवि, अर्थ-कवि तथा प्रतिभा–कवि। अश्वघोष अर्थ कवि हैं। स्थविर कवि अपने सब भाइयों मे वर्णन शैली मे बढ़ गया है। अशोक ने अश्वघोष के प्रवचनों को बौद्धों के मात (७) पढ़ने योग्य ग्रन्थों में गिनाया है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि बौद्ध कविता की निन्दा करते थे। किन्तु वे भावावेश से रोकने के लिए और सत्य को अनुभूतिपूर्ण करने के लिए ही ऐसा कहते थे। उनका कथन है कि:—

"हे भिक्षुओं ! एक दिन ऐसा आएगा जब कि जो भिक्षु शरीर, बुद्धि और विचारों से परिपक्व नहीं होगा वह गम्भीर अर्थपूर्ण प्रवचनों पर

ध्यान न देगा, न वह अपना कान ही उधर लगायेगा, न हृदय में ज्ञान के लिए यत्न करेगा, न उन्हें पढ़ने योग्य समझेगा तथा जो कवियों की बनाई हुई कवितायें होंगी, उन्हें ही गाया करेगा। इस प्रकार हे भिक्षुओ! नियमों में शिथिलता होने पर स्पष्टतः विचारों में कविता भाव प्रधान होती है और छन्दोमय होना, अलंकार से युक्त होना या व्यंग्य और मुहाविरेदार होना उसकी तरफ झुकने का एक कारण होता है।"

बुद्धचरित की अंतःपरीक्षा

बुद्धचरित पूरा नहीं मिलता है। सैमुअल बील ने एक इसका आँग्ल भाषा में अनुवाद किया है। जो चीनी भाषा से किया गया है। इस प्रकार चीनी भाषा का अनुवाद २८ सर्गों में समाप्त होता है जब कि कावेल और जॉन्टसन का आँग्ल अनुवाद केवल १३ सर्गों तक मिलता है और उतना ही अश्वघोष का बनाया हुआ कहा जाता है। १४ वें सर्ग का कुछ हिस्सा भी अश्वघोष ने बनाया यह कहते हैं। शेष के ४ सर्ग अमृतानन्द नाम के व्यक्ति ने जोड़े।

हर प्रसाद शास्त्री और कावेल के सम्पादित बुद्धचरित में यह अन्तर है कि उन्होंने ११ ऐसे श्लोक बतलाये हैं जो कावेल के संस्करण में नहीं पाये जाते। वे ६वें सर्ग से ४१वें श्लोक के आगे के पद्य हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन ११ पद्यों के मिलने से सर्ग का कथावशेष पूर्ण होता है अन्यथा नहीं। चीनी भाषा के अनुवाद में भी इन पद्यों का अर्थ मिलता है। शास्त्रीय वृत्तियाँ और मानसिक भावों का चित्रण अर्थात् हृदय पक्ष अधिक मिलता है। 'बुद्धचरित' ललित-विस्तर के साथ अधिक समता रखता है क्योंकि ललित विस्तर मे भी शुद्धोदन और असित के जीवन का वर्णन है जो कि अन्त में बुद्ध का शिष्य बन गया था। तुलना के लिए बुद्धचरित के प्रथम सर्ग का ८६वाँ श्लोकः—

कृतमतिरनुजसुतं च दृष्ट्वा—इत्यादि।

ललित विस्तर काः—

वदे त्वां वरपार्थवादृग्निभवे
सर्वे जने पूजितम्—इत्यादि।

पालि का वर्णन एक सा ही है।

'शारिपुत्र प्रकरण' नाट्य शास्त्र के नियमों के अनुकूल है। इसमें ६ अङ्क है। किसी भी अङ्क के ऊपर शीर्षक नहीं है। इसका नायक शारिपुत्र

अश्वघोष का व्याकरणज्ञान

अश्वघोष के (Phrase Idioms) विचार और भाव भी अत्यधिक महत्वपूर्ण मालूम होते हैं जब कि हम उनकी तुलना महाभारत और रामायण के भावों और वाक्यों से करते हैं। 'सौन्दरनन्द' की कुछ कवितायें अत्यन्त सुन्दर है। वह कहीं कहीं बुद्धचरित से उत्तम हैं। इसकी उपमायें अश्वघोष को महाकवि सिद्ध कर रही हैं। अश्वघोष ने द्विकर्मक धातुओं का अधिक प्रयोग किया है, क्रियाओं के साथ 'प्रति' शब्द का अधिक प्रयोग है। अधिकरण कारक विधिलिङ् के साथ अधिक प्रयुक्त है, क्त प्रत्यांत शब्द विशेषणों के रूप में प्रायः आये हैं। कर्म प्रत्ययान्त धातुयें बहुधा विधिलिङ् मे प्राप्त होती हैं।

इसने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। इसमें कृत्रिम अलंकारों का और वर्णनात्मक वाक्यों का अधिकतया प्रयोग मिलता है। कहीं कहीं पर वह केवल क्रियाओं से पूरा श्लोक बना डालता है। उत्प्रेक्षा और अनुप्रास पद और श्लोक के अन्त में पाये जाते हैं। ऋष्यश्रंग की कथा महाभारत में प्राप्त होती है। शान्ता नाम की मुनि पुत्री का भी इसमें उल्लेख किया गया है। तालजंघ का कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार प्रयोग मिलता है जो सातवें सर्ग के ३९ वें श्लोक में और अर्थशास्त्र के प्रथम अध्याय के छठे अधिकरण में है।

बुद्धचरित अश्वघोष की कृतियों में सर्व प्रथम है। इस विषय में यह शंका होती है कि वह कौन सा प्रकार था जिसके आधार पर यह रचा गया। दूसरी शंका यह है कि चीनी भाषा मे लिखा गया 'बुद्धचरित' अर्थ की दृष्टि से संदिग्ध है। वस्तुतः इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है यही द्वितीय प्रश्न का उत्तर है। किन्तु इन दोनों काव्यों मे 'महावस्तु' और 'ललितविस्तर' का विशेषतया अनुकरण पाया जाता है।

रचनागत विशेषताएँ

अश्वघोष की लेखन शैली की एक विशेषता यह है कि उसने कथा-शैली में साहित्य शैली व शास्त्र को मिलाकर कठिनता उत्पन्न कर दी है जिससे वह प्रचारक, कवि, विद्वान सिद्ध होता है। आख्यान और काव्य की पद्धति से अश्वघोष की पद्धति भिन्न है जैसे रामायण में सारी रचना अनुष्टुप छन्द

में की गई है उसका प्रकार एक सा है। निरन्तर समान छन्दों के प्रय ग से उत्पन्न नीरसता तथा अनुप्रासों का वैभिन्य दूर करने की इच्छा होती है। वाक्यांशों के प्रयोग की आवृत्ति और कथा की मन्द प्रगति सुनने वालों की उदासीनता और बढ़ा देती है। जबकि अश्वघोष के काव्यों में प्रत्येक पद्य अपनी अलग सत्ता रखता है। अश्वघोप ने यह दिखलाया है कि पद्यों का महाकाव्य में कैसे प्रयोग होता है वह साधारण वाक्यांश को श्लेषात्मक रचना में प्रस्तुत करता है। उसकी कृति का बाद के कलाकारों ने अनुकरण किया। कालिदास की रचनाओं में हम देखते हैं कि वह कभी कभी ऐसी कविता करता है जो भावों की एकता होने पर भी अपनी अनुप्रास संबंधी या छन्द विषयक विशेपता रखती है। कालिदास की कृतियों में यह देखा जाता है कि उसके श्लोकों के बाद अन्त मे अनुप्रास नहीं भी होते किन्तु साधारणतया वर्ण-ध्वनि साम्य सारे ही श्लोक में दिखलाई पड़ता है। बाद के कवियों ने उसकी इस प्रवृत्ति का अनुकरण किया। अश्वघोष ने अपनी रचना में कुछ कठिनाइयों का सामना किया और श्लोकों के पादों को भिन्न रूप मे रखा। उसका वर्णन प्रभावशाली और काव्यों का अविभाज्य अंग है। जिससे पाठकों का मन मुख्य घटना से विमुख नही होता साथ ही वह बड़ी प्रवणता के साथ धार्मिक सन्देश भी कथा के द्वारा देता है। उसके लिए कथा का आनन्द गौण है किन्तु धार्मिक संदेश देना और काव्य कलाका प्रदर्शन मुख्य है। अत:अश्वघोप के लिए यह समस्या थी कि वह अपने धर्म की प्रसिद्धि कविता के साथ कैसे करे?इसे उसने अपने काव्य में भली प्रकार निभाया है। जो मार्ग उसने ग्रहण किया है वह घटनाओं, कविताओं और बीच के शीर्पकों तथा प्रयुक्त छन्दों के सामन्जस्य के साथ है यमक अलंकार को विशेषतया उसने अपनाया है।

उपमाओं का सफलता के साथ प्रयोग अश्वघोष का विशेषगुण हैं क्योंकि भावयुक्त अर्थों को वर्णनात्मक कविता के द्वारा बिना इसके प्रकाशित नहीं किया जा सकता। पाठक की रुचि कम न होने पावे इसके लिए वक्रोक्ति का प्रयोग या व्यंग्यार्थ का बाहुल्य आवश्यक है। अश्वघोष की वक्रोक्ति में उपमा भी स्थान रखती है। वह अपने समकालीन कवियों में उपमा के ऐसे प्रयोग के कारण अग्रगण्य है। गर्नर (Gurner] के मत में अश्वघोप की कविता मनोभावों के चित्रण करने में अद्वितीय है। जहां जहां पर किसी अर्थ या अलंकार की आवृति की गई है। वहां एक अपने ढंग की नवीनता भी है। बाह्य चेष्टाओ को प्रकाशित करने के लिए ऐसी उपमायें दीं गई हैं जिनसे उपदेश एवं मानसिक भावों का प्रकार स्पष्ट हो

हो जाता है। बुद्ध ने जब काम के प्रहार को और उसकी सेना को अपने संयम से परास्त किया उस समय का सारा वर्णन उपदेशात्मक है।

सौन्दरनन्द समीक्षा

सौन्दरनन्द में जगली वन्य और पर्वतीय पशुओं का जीवन सजीव रूप में वर्णित है। अश्वघोष की आचार-प्रधान-वृत्ति और अपने धर्म के प्रति प्रसार की भावना कविता के आधार का निर्माण करती है। विषय निरूपण का ढंग इतना उत्तम है कि प्रणय वार्त्ताओं को भी अतिक्रान्त क॰ जाता है। कृतघ्नता की उपमा अपने घर वालोंको धोखा देनेवाले से की है। रूपकालंकार का प्रयोग तथा दुख को सागर बतलाना इतना अधिक है कि रामायण और बुद्धचरित के इन स्थलों में अधिक समता है। उसने रामायण से उपमाओं का ग्रहण किया है। कमल, लता, सूर्य, विद्युत पयोदादि भी रामायण की भांति वर्णित है। वाक्यांश श्लोकों में सुन्दरता के साथ रखे गये हैं। एक क्रिया से अनेक कर्त्ताओं को, एक कर्ता को अनेक क्रियाओं से अनेक स्थानों पर प्रदर्शित किया है। वह यमक के लिए अपना झुकाव अधिक दिखलाता है जैसे सौन्दरनन्द के १८वें सर्ग के ८वें श्लोक के निसंशयसंशयोमे।' लिखकर दिखलाया है।

उपजाति छन्द का प्रयोग और अन्तिम चरणों के शब्दों की एकता पाठक को पढ़ने से उकताने को रोकती है। वह एक ही शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग करता है जिससे पाठक चमत्कृत हो जाता है। इत्सिंग ने ठीक कहा है कि :—

"He clothes manifold ideas in few words, for besides this habitual use of words in two or more meanings, every single word almost in his poems is fragrant and should be given its full value and translation." उसके सादृश्य के उदाहरण तथा शब्द रचना का प्रकाश प्राचीन रचनाओं से उत्तम है। अर्थात् वह कविता धर्म और अपने सिद्धान्तों में अद्वितीय है। उसने स्वयं को कलामुक्त मनोवृत्तिवाला, तथा बुद्ध के सिद्धान्तों में आश्रय लेने वाला सिद्ध किया है। उसके काव्य में जो धार्मिक प्रेरणा दृष्टिगोचर होती है वह कविता के सौन्दर्य की वृद्धि करती है। संसार की वस्तुओं को अनित्य तुच्छ मानते हुए उसने उनका उचित वर्णन किया है। जिससे बुद्धानुयायी नर-नारी आनन्दित हो जाते हैं। साधु होने के कारण वह बुद्ध के महायान मत का अनुयायी था किन्तु हीनयान के सिद्धान्तों को

भी अपनाता था। उसने सर्वास्तिवाद और स्थविरवाद का पालि के माध्यम से प्रचार किया।

उपमाओं को यथावत् तुलनात्मक दृष्टि से रखना उसकी विशेषता है क्योंकि उपमाओं को जोकि अलंकारों के साधक कारण हैं यदि ठीक प्रकार से न दिखाया जावे तो बुद्ध चरित एवं सौन्दरनन्द की लम्बी२ कविताओं में वर्णन का जो भावपूर्ण सौन्दर्य है वह नष्ट हो जावे। अध्येता की कल्पना को वक्रोक्ति के प्रयोग से और भी उत्तेजना मिलजाती है जिसमें व्यंग अर्थ और भी सहायक बनता है। अश्वघोष की रचनाओं में वक्रोक्ति एक प्रकार की तुलना रखती है। वह उपमा देने में अन्य कवियों को मात करता है और इनका बहुत ही प्रेमी है। गार्नर का कथन है कि अश्वघोष की कविता मनोविज्ञान—मूलक उपमाओं से परिपूर्ण है। वह प्राकृतिक पदार्थों से या अपने अनुभव के बल पर उपमायें रखता है। बाह्य क्रियाओं का वर्णन उपदेशात्मक होता है जो कि काम की सेना वर्णन में अवलोकनीय है। पर्वतीय हिंसक जन्तुओं का भी सौन्दरनन्द के १०वे सर्ग में उनके मनोभावों के साथ वर्णन किया गया है:

चलत्कदम्बे हिमवन्नितम्बे तरौ प्रलम्बे चमरो ललम्बे।
छेत्तुं विलग्नं न शशाक बालं कुलोदगतां प्रीतिमिवार्यवृत्तः॥ १०/११

सुवर्णगौराश्च किरातसंघा मयूरपत्रोज्ज्वलगात्रलेखाः।
शार्दूलपातप्रतिमा गुहाभ्यो निष्पेतुरुद्गार इवाचलस्य॥ १०/१२

दरीचरीणामतिसुन्दरीणां मनोहरश्रेणिकुचोदरीणाम्।
वृन्दानि रेजुर्दिशि किन्नरीणा पुष्पोत्कचानीमिव वल्लरीणाम्॥ १०/१३

नगान्नगस्योपरि देवदारूनायासयन्तः कपयो विचेरुः।
तेभ्यः फलं नापुरतोऽपजग्मुर्मोघप्रसादेभ्य इवेश्वरेभ्यः॥ १०/१४

अन्य कवियों की उपमायें या तो केवल शब्दों के बल पर हैं जिनमें कवित्व का भाव बिल्कुल नहीं होता है, जहाँ तदनुकूल शब्दों का चयन नहीं होता। जब वे शब्द प्रधान होती हैं तो केवल बुद्धि को प्रभावित (Appeal) करती हैं। उसने जब व्याकरणानुसार पाण्डित्यपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है तब भी उनमें से मानसिक-ज्ञानपूर्ण आभा लुप्त नहीं होती। रूपक भी उपमा-मूलक अनेक स्थानों में दिखलाई पड़ते हैं। दीपक रूपक को और भी उत्तम बना देता है। यमक जो कि एक भिन्न ही प्रकार का है

उसकी कवित्व शक्ति का प्रकाश करता है। यह यमक पाद के अन्त में है जो कि ध्वनि साम्य को प्रकट करता है या पूरी कविता की पंक्ति दोहरा दी गई है जिससे यमक का सौन्दर्य द्विगुणित हो जाता है। सौन्दरनन्द के ८वें सर्ग के ३२वें श्लोक में ६ शब्दों में से ४ शब्द ऐसे होते हैं जो 'मदा' और 'प्रदा' शब्द का बार बार प्रयोग रखते हैं।

'प्रमदाः समदा मदप्रदा प्रमदा बीतमदा भयप्रदाः।' ८—३२

उपजाति छन्दों का प्रयोग अनेक सर्गों तक चला जाता है किन्तु पाठक उकताता नहीं। उसकी कविता गानपूर्ण और अनुरणन से युक्त होती है। वह ऐसे अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग नही करता जिनके अर्थ गूढ हों।

सौन्दरनन्द में वर्णित मोक्ष विषयक वर्णन भगवद्गीता में भी प्राप्त होता है। लङ्कावतार सूत्र की कारिकाएं भी इनके साथ साम्य रखती हैं। गुजरात मे गुरू को अज्ञान नाशक और नेत्रोन्मीलक कहा गया है। यही गुरू की परिभाषा बुद्ध ने नन्द के प्रति की है।

उन्मीलितस्यापि जनस्य मध्ये निमीलतस्यापि तथैव चक्षुः।
प्रज्ञामयं यस्य हि नास्ति चक्षुश्चक्षुर्न तस्यास्ति सचक्षुपोऽपि ॥१८—३६

भाव सामञ्जस्य

कौटिल्य अर्थशास्त्र के अनुसार जिस व्यक्ति की प्रबन्ध समिति में नियुक्ति की जाती थी उसमें सौहार्द भक्त्यादि गुणों का होना आवश्यक है। अश्वघोप ने भी आदर्श राजा के विपय मे 'सौहार्ददृढभक्तिमान' कहते हुए इसी अर्थ की पुष्टि की है। यदि राजा पुत्रवत प्रजा का हित चाहे तो रानी को भी अपनी सन्तान के समान स्नेह करना चाहिए। जैसा कि लिखा है :—'प्रजासु मातेव हितप्रवृता।"

दशरथ और इक्ष्वाकु दोनों ही क्रमशः अयोध्या और कपिलवस्तु के राजा थे। बुद्ध का जीवन बुद्ध प्राप्ति के पूर्व में राम के जीवन से मिलता जुलता है। उसका बुद्ध प्राप्ति से पूर्व का नाम सर्वार्थसिद्धि था और वह शाक्य वंश का एक राजपुत्र था। यदि अयोध्या का रामराज्य वाल्मीकि के लिए एक आदर्श था तो अश्वघोष के लिए बुद्ध—प्राप्ति काम-विजय के पश्चात् भी शाक्य राज्य वैसा ही था। उसने शाक्य राजा का आदर्शरूप सिद्धार्थ के जन्म के समय और कपिलवस्तु मे तथागत के प्रवेश के समय

दिखलाया है। प्रथम बार उस राज्य में सुरक्षा, समृद्धि, सन्तोष, सदाचार सुख, पवित्रता तथा जो गुण पृथ्वी को स्वर्ग बनाते हैं वे सब ही चित्रित किए गए हैं। बुद्ध के जीवन को बौद्ध की दृष्टि से और उनके श्रद्धालु भक्तों की दृष्टि से दो प्रकार से देखा जा सकता है। अश्वघोष ने सिद्धार्थ को एक तपस्वी की भांति चित्रित किया है जो सत्य के अन्वेषण में मारा मारा फिरता रहा। उसने गीता के—"चतुर्विधः भजन्ते माम्" इस श्लोक का भी पराशाँति के रूप में उल्लेख किया है। बुद्ध धर्म और संघ की शरण में जाने से मोक्ष की प्राप्ति मानता है—"शीलं हि शरणं सौम्य! कान्तार इव देशिकः" यह वाक्य इसी तथ्य को प्रकट करता है। अश्वघोष ने हीनयान को भी भलीभाँति प्रकट किया है। उसने सांसारिक प्रलोभनो से हटने के लिए ही स्त्री, जुगुप्सा का वर्णन किया है। बुद्ध का शाक्य नाम इस लिए पड़ा क्योंकि उनके पूर्वज कपिल का आश्रम शाक नामक वृक्षों से घिरा था, उसकी मृत्यु होने पर उसके वंशज अपने धर्म से हटकर शेर चीतों का शिकार करने लगे। सिद्धार्थ ने यह देखकर मगधराजकी राजधानी गिरिव्रज में जाकर अपना निवास बनाया। बाद में यह नगर बड़ा विशाल और प्रसिद्ध बन गया। शुद्धोदन नन्द और सर्वार्थसिद्धि का पिता था। वह साँसारिक आकर्षणों से ऊपर उठा था। स्वयं सुन्दर होते हुए वाह्य वस्तुओं में सौन्दर्य लाने का प्रयास नहीं करता था।

शुद्धोदन अधिकारी था पर अभिमानी न था। उसकी प्रधान महिषी का नाम माया था जो कि शची और लक्ष्मी के समान थी। उसके क्रोध, भ्रम और मान की मात्रा न थी। नन्द और बुद्ध के स्वभावों में बड़ा भेद है। बुद्ध ने नन्द को वैराग्य दिलाने के लिये उपदेश दिया है किन्तु दोनों भाइयों में स्वभाव की कोमलता, स्पष्टवादिता का गुण एक सा पाया जाता है।

बुद्ध ने संसार-त्याग के पश्चात् भार्गव के आश्रम में प्रवेश किया, जहाँ पर हरिण निडर होकर रहते थे और पक्षी शांति से बसेरा करते थे। जब वह भार्गव के पास पहुँचा तब उसके शिष्यों ने सिद्धार्थ का आदर करने में कोई कमी नहीं की। कुछ देर वातचीत के बाद भार्गव ने बुद्ध को धर्म का तत्व समझाया जिसे सुनने पर बुद्ध ने कहा आपका धर्म स्वर्ग प्राप्ति का साधन है किन्तु मै स्वर्ग का सुख न चाह कर मुक्ति की कामना करता हूँ।

जब कि सिद्धार्थ विरक्त होकर वन को चला गया तब शुद्धोदन का प्रधान मंत्री इसकी खोज मे निकला। उसे उन्होंने एक वृक्ष के नीचे कांति-

युक्त शरीर वाला देखा। उसे उन्होंने प्रणाम किया। वियोग के दुःखं और सांसारिक युक्तियों के देने पर भी पिता, माता, स्त्री और पुत्र सिद्धार्थ को न लौटा सके। उसने कहा मैं पुत्रशाली पिताओं की भावनाओं को जानता हूँ। यह भी जानता हूँ कि प्रजा मेरे प्रति कितना प्रेम करती है कि मैं व्याधि, मृत्यु, जरा से मुक्ति के लिये केवल प्रवज्या के अन्य कोई मार्ग नहीं पाता। यदि अपने प्रिय वन्धुओं से कभी वियोग ही न हो तो मैं ऐसे प्रेम को करने के लिये उद्यत हूँ। उनकी दृढ़ धारणा को जानकर और यह सुनकर कि जब तक मै अन्तिम सत्य को, भलाई और बुराई के विवेक को न जान लूँगा और परिश्रम से सत्य की प्राप्ति न कर लूँगा तब तक अपने निश्चय से न डिगूँगा। सूर्य पृथ्वी पर उतर आवे, हिमालय अपनी दृढ़ता को छोड़ देवे किन्तु मैं सांसारिक पुरुषों के इन्द्रिय-जन्य सुखों मे न फँसूगा। घर जाने की अपेक्षा अग्नि की लपटों में जल जाना अच्छा समझता हूँ।

अश्वघोष का काव्य सौष्ठव

ईसा की प्रथम शताब्दी में काव्यरचना की प्रवृत्ति व्यास के बाद अश्वघोष या कालिदास में परिलक्षित होती है इसे हम रामायणोत्तरवर्त्ती-काव्य-काल कह सकते हैं। इसमें महाभारत रचनांकाल के समय प्रसिद्ध वैदिक-हिंसा के प्रति जुगुप्सा की भावना प्रबल रूप में प्राणियों के हृदय में अधिकार जमा चुकी थी साथ ही शंकराचार्य और बुद्ध के विचारों ने कहीं शंकराचार्य के मतानुयायियों को बौद्ध धर्म के प्रति विद्वेषी बनाया था तो कहीं बौद्ध विचारों ने अन्तःकरण की पवित्रता के लिये अनुष्ठीयमान वैदिक कर्मकाण्डों के प्रति हिंसा मिश्रित होने से घृणा का भाव उत्पन्न किया था किन्तु दोनों ही आचार्यों का ध्येय जीवात्मा को चिरशांति का पथिक बनाना था। उसके उपायों में एक ने क्षणिकता के सिद्धान्त से संसार की अनित्यता सिद्ध की, दूसरे ने विवेक के द्वारा संसार की असारता का प्रतिपादन करते हुये अज्ञानमूलक जगत् को हेय बतलाया। किन्तु शंकराचार्य की हेयता का सिद्धान्त काव्य-गुडजिह्विका से लोक रुचि को आकृष्ट करने वाला न बना परन्तु बौद्ध सिद्धान्त के प्रचारकों में अश्वघोष और शान्तरक्षित ऐसे विद्वान् हुये जिन्होंने काव्य को प्रचार

का साधन बनाया है और जनसाधारण में बुद्ध-जीवन की कथा गाते हुए वैराग्य एवं आत्मज्ञान की पिपासा जागरित की। अश्वघोष ने बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द लिखकर जो विषय दोषों का प्रदर्शन किया है वह इस अंश की दृष्टि से कालिदास से कहीं बढ़ कर है सौन्दरनन्द और बुद्ध चरित में, बुद्ध चरित पहली और सौन्दरनन्द बाद की रचना है। सौन्दर शब्द नन्द की भार्या सुन्दरी शब्द से अण् प्रत्यय करने पर बना। जहाँ नन्द सुन्दरी के सौन्दर्य को सर्वस्व समझता है, ऐसे काव्य को सौन्दरनन्द के नाम से पुकारा गया है अथवा 'सौन्दर' पद का अर्थ सुन्दरी की वस्तुएँ है, उन सौन्दरों में नन्द अर्थात् आनन्द जिसको प्राप्त हो ऐसा राजा सौन्दरनन्द नाम से कहा गया है। यहाँ पर इन्द्रमुख के समान समस्त शब्द समझ लेना चाहिये। वहाँ जैसे एकमुख शब्द का लोप किया गया है वैसे ही यहाँ एकनन्द शब्द का लोप किया गया है ऐसा समझना चाहिये। यह कह चुके हैं कि अश्वघोष की लेखनी का कुण्ठुपपन बुद्ध चरित में मिट गया है—अतएव काव्य की दृष्टि से सौन्दरनन्द उत्कृष्टतर है। काव्य की उत्कृष्टता इस बात में मानी जाती है कि काव्य प्रसादगुण युक्त हो। प्रसाद का परिपाक तब समझा जाता है जब कि पढ़ने दुरान्वय दोष और क्लिष्टता दोनों न हों, जैसे कालिदास ने—

> अथान्धकारं गिरिगह्वराणां,
>
> दंष्ट्रामयूखैः शकलानि कुर्वन् ।
>
> भूयः स भूतेश्वर पार्श्ववर्ती,
>
> किञ्चिद् विहस्यार्थपतिं बभाषे ॥

इसी प्रकार—

> ध्रुवापि तावत्प्रियदर्शनोऽपि,
>
> सौभाग्यभाग्याभिजनान्वितोऽपि ।
>
> यस्त्वां प्रियो नान्वचरत्कदाचित्,
>
> तमन्यथा वेत्स्यतिरिन्जनत्वि ॥ सौन्दर० ६–२१ ॥

इन दोनों पद्यों में दूरान्वय दोष नहीं है। एकाध पद यदि इधर उधर कर भी दिया जावे तो वह "निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः" के अनुसार दोष नहीं कहा जा सकता और यह बात कालिदास में कहीं कहीं और अश्वघोष में प्रचुरतया पाई जाती है। अश्वघोष ने कुछ पद्य ऐसे

भी बनाये हैं जिनमें क्रियाओं का ही विन्यास किया गया है या क्रियाओं का ही बाहुल्य है। यथा—

> रुरोद मम्लौ विरुराव जग्लौ,
> बभ्राम तस्थौ विललाप दध्यौ।
> चकार शेषं विचकार माल्यम्,
> चकर्त तक्तं विचकर्ष वस्त्रम् ॥ सौन्दर० ६–३४ ॥

इस पद्य में किसी के शोकमग्न होने पर कितनी चेष्टायें होती है उनका सजीव वर्णन है। पति के वियोग में उसने [सुन्दरी] क्या क्या किया इस विषय में यह पद्य भी अनूठा है—

> न भूषणार्थो मम संप्रतीति,
> सा दिक्षु चिक्षेप विभूषणानि।
> निर्भूषणा सा पतिता चकाशे,
> विशीर्णपुष्पस्तबका लतेव ॥ सौन्दर० ६—२८ ॥

'बुद्ध चरित' में बुद्ध की उत्पत्ति के समय राज वृद्धि का वर्णन करते हुये जिस उपमा का प्रयोग किया है वह कालिदास के काव्य में अप्राप्य है—

> आजन्मनो जन्मजरांतकस्य तस्यात्मजस्यात्मजित: स राजा।
> अहन्यहन्यर्थगजाश्वमित्रैर्वृद्धि ययौ सिन्धुरिवाम्बुवेगैः ॥
>
> बुद्ध चरित २—१

बुद्ध चरित के २–३४ में 'ससञ्जे' और 'ररञ्जे', का तथा 'जिगाय' और 'जज्ञे' का, २—३५ में 'अध्यैष्ट' आर 'अध्यगीष्ट' का, २—३६ में 'अनर्च', 'जुहाव', 'ददौ' का एवं उसके आगे के पद्यों मे किये गये लिडन्त-प्रयोग और २—४४ में किया गया सन्नत-प्रयोग उसके व्याकरण-परिज्ञान के परिचायक है—

> न चाजिहीर्षीद् बलिमप्रवृत्त: न चाचिकीर्षीत्परवस्त्वभिध्याम्।
> न चाविवक्षीद् द्विषतामधर्मं न चाविवक्षीद्धृदयेन मन्युम् ॥
>
> बुद्ध चरित २—४४

यहाँ वद् और वच धातु का प्रयोग दर्शनीय है।

ऐसे कवि कम है जिन्होंने 'उसके कान में फुसफुसाहट की', इसकी ठीक ठीक संस्कृत बनाई हो। इस विषय में अश्वघोष कहते हैं कि—

काचित्ताम्राधरोष्ठेन मुखेनासवगन्धिना ।
विनिशश्वास कर्णेऽस्य रहस्यं श्रूयतामिति ॥
बुद्ध चरित ४—३१

वैराग्य-प्रदर्शन के लिये उन्होंने स्त्रियों को उपदेश दिया है कि वे उदार बनें—

दाक्षिण्यमौषधं स्त्रीणां दाक्षिण्यं भूषणं परम् ।
दाक्षिण्यरहित रूपं निष्पुष्पमिव काननम् ॥ बुद्ध० ४—७०

तथा इतने उदाहरण दिये हैं कि जिनसे वैराग्य का उद्भव हुए बिना रह नहीं सकता। इनमें माद्री और पाण्डु का उदाहरण सर्वाधिक हृदयस्पर्शी है। अभिनिष्क्रमण के समय जब बुद्ध यशोधरा के अन्तःपुर मे अन्तिम बार उसका मुखावलोकन करने पहुँचे और पास में सोते हुये छोटे बच्चे को देखा तो वहां पर कवि ने जिस प्रकार स्त्रियों को शाल-भञ्जिका का रूप दिया है वह पठनीय है। छन्दक द्वारा उनका वन में विसर्जन सुमन्त्र द्वारा राम के विसर्जन से कम करुणाजनक नहीं। तपोवन के लिये जो स्थान चुना गया वह हिमालय था और वहाँ पर विविध प्रकार के फलों, पशु-पक्षियों का जो वर्णन है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सृष्टि की उत्पति के विषय में कहा है कि आग और पानी कभी साथ नहीं रहते किन्तु शरीर को बनाते समय दोनों मित्रता से काम करते हैं:—

अद्भिर्हुताशः शममभ्युपैति तेजांसि चापो गमयन्तिशोपम् ।
भिन्नानि भूतानि शरीरसंस्थान्यैक्यं च गत्वाजगदुद्वहन्ति ॥
यत्पाणिपादोदरपृष्ठमूर्ध्ना विवर्तते गर्भगतस्य भावः ।
यदात्मनस्तस्य च तेन योगः स्वाभाविकतत्कथयन्तितज्ज्ञाः ॥
बद्ध० ९—६१, ६२

महाकवि अश्वघोप ने एक सबसे विचित्र बात की है, वह यह कि—

'अपि माप मपं कुर्यात् छन्दो भङ्गं न कारयेत् ।'

इस उक्ति के अनुसार महाकवि अश्वघोप ने निम्नलिखित श्लोक में आर्यपुत्र को 'अर्यपुत्र' करके लिखा है:—

प्रियेण वश्येन हितेन साधुना त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो ह्यपुनर्निवृत्तये रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव ।।

बुद्ध० ८—३४

इसी प्रकार अन्य कई स्थलों पर अपाणिनीय प्रयोगों को किया है। जव कभी सुख के दिन होते हैं तो अनेक मित्र बन जाते हैं किन्तु आपत्ति के साथी कम होते है—इस बात के लिये अश्वघोप ने लम्बे वर्णन किये है, उनमें से निम्नलिखित श्लोक अत्यन्त हृदयग्राही है:—

ये चार्थकृच्छ्रेषु भवन्ति लोके समानकार्याः सुहृदा मनुष्याः ।
मित्राणि तानीति परैमि बुद्ध्या स्वस्थस्य वृद्धिष्विह को हिनस्यात् ।।

बुद्ध० ११—४

कामनिन्दा का वर्णन करते हुये क्या ही अच्छा लिखा है कि—

अस्थि क्षुधार्ता इव सारमेया भुक्त्वापि यान्नैव भवन्ति तृप्ताः ।
जीर्णास्थिकङ्कालसमेपु तेपु कामेपु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ।।

बुद्ध० ११—२५

दीर्घायु पाने का वह किसी को श्रेय देना नहीं चाहता। वह इसे एक अभिशाप मानता है और कहता है कि:—

जरायुधो व्याधिविकीर्णसायकोयदान्तको व्याधइवाशिवःस्थितः ।
प्रजामृगान् भाग्यवनाश्रितांस्तुदन् वयः प्रकर्प प्रतिको मनोरथः ।।

बुद्ध० ११—६२

महाभारत में 'नगाह्वयो नाम नगारिकेतुः' इत्यादि पद्यों में जैसा गूढ़ता लाने का प्रयास किया है, ठीक उसी प्रकारः—

हिमारिकेतूद्भवसंभवान्तरे यथा द्विजो याति विमोक्षयस्तनुम् ।
हिमारिशत्रुक्षयशत्रुघातने तथान्तरे याहि विमोक्षयन्मनः ।।

बुद्ध० ११—७१

इस पद्य में वादलों के वीच से चातक उड़कर निकल जाता है, यह अर्थ वतलाने के लिये 'हिमारिकेतूद्भवसम्भव' शब्द का प्रयोग किया है क्योंकि हेमारि अग्नि उसका केतु, धूम उससे उद्भव वादल उससे सम्भव वृष्टि उसके वीच में से चातक निकलता है। तथैव हिमारि

(सूर्य) के शत्रु तम (अज्ञान) के क्षय (विनाश) कार्य करने में जो शत्रु (स्रक्चन्दनवनितादिविघ्न) उनके घातन करने मे मन को लगा और मोक्ष का पथिक बन, यह कहा है। इस पद्य की रचना से स्पष्ट है कि यह कविता 'नारिकेलपाक' के समान 'द्राविडप्राणायाम' से अर्थ की दुरुहता भी अश्वघोष को कहीं कहीं अभीष्ट है। इतना ही नहीं मार पराजय' में प्राय: उन्होंने इतनी अधिक उपमाओं का प्रयोग किया है और साथ ही वहाँ ज्ञान वृक्ष का जो रूपक बांधा है वह बहुत ही हृदयङ्गम है:—

क्षमाशिफो धैर्यविगाढमूलश्चारित्रपुष्पः स्मृतिबुद्धिशाख ।
ज्ञानद्रुमो धर्मफलप्रदाता नोत्पाटन ह्यर्हति वर्धमानः ॥
बुद्ध० १३-६५

व्याकरण विरुद्ध प्रयोग

तत. स सश्रुत्य च तस्य तद्वचो महामुने प्रेक्ष्य च निष्प्रकम्पताम् ।
जगाम मारो विमनो हतोद्यमः शरैर्जगच्चेतसि यैर्विहन्यते ॥
बुद्ध० १३/७०

इस पद्य में मार का विशेषण "विमना" दिया है और उससे यह प्रतीत होता है कि यह विमनः की जगह प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार—

"निरसा यदि ते तस्मादध्यात्मे धीयता मनः ।
प्रशान्ता चानवद्या च नास्त्यध्यात्मसमा रतिः ॥
न तत्र कार्यं तूर्यैस्ते न स्त्रीभिर्न विभूषणैः ।
एकस्त्व यत्रस्थस्तया रत्याभिरम्पसे ॥" सर्ग ११/३४, ३५

इन दोनों पद्यों के अन्तिम चरण में "एकस्त्वं यत्रस्थः" में स्पष्ट ही छन्दो भंग है क्योंकि दो अक्षरों की कमी है, अत· "एकस्त्वमेव" ऐसा पाठ करने पर यह दोष हट सकता है। बुद्धचरित वाले पद्य मे कुछ लोगों का यह समाधान है कि "विमनाः" शब्द का हत शब्द के परे सन्धि करने पर विमनो बन सकता है, पर यह प्रयोग भ्रामक है। इसी प्रकार सौन्दरनन्द के ७/३२ मे दिलीप को 'दिलिप' कर दिया। ७-११७ मे "भ्रातृपिणा" सन्धि करदी, और ८/१५ में 'हालाहल' का 'हालहल' कर दिया। सौ० १८ व २८ तथा बुद्ध० ८।३४ में "आर्य" का अर्य कर दिया, का भी यही हाल है।

"अद्भुत संदर्भ"

बुद्ध चरित के चतुर्थ सर्ग के १६वें श्लोक में यह एक अद्भुत बात लिखी है कि महर्षि व्यास की काशि सुन्दरी नाम की वेश्या ने लात और घूसों से पूजा की थी। इसी प्रकार मन्थाल गौतम नाम के भिक्षुक ने जंघा नाम की वेश्या के घर रह कर मुर्दों को ढोया था। कहते हैं कि इस वेश्या के घर में जब कोई धनवान् आता था, तो वह उस पुरुष की हत्या कर देती थी, तथा इस भिक्षु के द्वारा उनके शवों को दूर फिकवाया करती थी। भिक्षुकों के नाम पर वह कलङ्क न लगे, इसलिये कुछ विद्वानों ने भिक्षु शब्द की व्युत्पति भिक्ष् धातु से नहीं मानी, किन्तु 'भज् सेवायां' से सन् करने पर भिक्षु शब्द की व्युत्पत्ति की है। (देखिये बुद्ध चरित सर्ग ४।पद्य १५-२०) इसी प्रकार गौतम ऋषि के बारे में लिखा है कि उसने अपना सम्बन्ध एक नीच जाति की स्त्री से किया था। ऋष्यश्रृङ्ग को वश में करने वाली कोई शान्ता नाम की वेश्या थी। विश्वामित्र की तपस्या भंग करने वाली मेनका संसार भर में प्रसिद्ध हैं, किन्तु अश्वघोष लिखता है कि विश्वामित्र की तपस्या भग करने वाली घृताची नाम की वेश्या थी। ये बातें प्रसिद्ध पुराणों में तो स्पष्ट मिलती नहीं, बौद्ध पुराणों में कहीं हों तो कह नहीं सकते। इन सब बातों के सन्दर्भ के लिये चतुर्थ सर्ग के ११ से २० तक के श्लोक में देखिए।

अश्वघोष के नाटक और प्रकरण

सिलवॉ लेवी के अनुसार अश्वघोष शायद एक गेय नाटक का भी लेखक है। इसमे राष्ट्रपाल की कथा कही गई है।

शारिपुत्र प्रकरण आदि तीन नाटक—अत्यन्त प्रचीन समय मे ताल-पत्र पर लिखित तीन नाटकों के अवशेष प्राप्त हुये हैं। एक के अन्तिम वाक्य से उसका नाम, प्रणेता का नाम और अङ्क संख्या स्पष्ट है। ग्रन्थ का नाम शारिपुत्र प्रकरण या शारद्वतीपुत्र प्रकरण है। प्रणेता है स्वर्णाक्षी का पुत्र अश्वघोष और अङ्कों की संख्या नौ है। शारिपुत्र प्रकरण मे उन घटनाओं का वर्णन है जिनके परिणाम स्वरूप मौद्गल्यायन और शारिपुत्र बुद्ध द्वारा बौद्ध बनाये जाते हैं। अश्वजित से मिलने के बाद शारिपुत्र अपने मित्र विदूषक से बुद्ध के उपदेशक होने के अधिकार के बारे में बहस करता है। विदूषक कहता है कि शारिपुत्र-सरीखे ब्राह्मण को क्षत्रिय का उपदेश ग्रहण नहीं

करना चाहिए। 'किन्तु जिस तरह जल से ताप शांत होता है उसी तरह नीच जाति के भी वैद्य द्वारा दी गई दवा बीमारी के लिये हितकर ही होती है'—यह कह कर शारिपुत्र से मिलता है और उससे उसकी प्रसन्नता का कारण जानता है। दोनों बुद्ध के पास जाते हैं, वह उनका सत्कार करता है और उनसे भावी ज्ञान-आदि के बारे में भविष्यद्वाणी करता है। प्रकरण के अन्त में शारिपुत्र और बुद्ध के बीच दार्शनिक वार्तालाप होता है। दोनों शिष्यों की प्रशंसा कर बुद्ध भरत वाक्य उच्चारण करता है।

शारिपुत्र प्रकरण अधिकांश बातों में नाट्य शास्त्र के और कुछ में व्यवहार के अनुकूल है। इस प्रकरण में नौ अंक हैं। नायक धीर और प्रशान्त एक विप्र है, नायिका कुलजा स्त्री या वेश्या है, पता नहीं। कवि कल्पना द्वारा सच्ची घटना में परिवर्तन कितना किया गया है। ये बातें शास्त्र सम्मत हैं। अंकों के नाम नहीं हैं। भरत वाक्य के पहले 'अतः परमपि प्रियमस्ति' नहीं है और नायक के मुख से भरत वाक्य का उच्चारण भी नहीं हुआ है—ये बातें व्यवहार-असम्मत हैं। सर्वत्र बुद्ध के रहते हुये किसी और के मुख से भरत वाक्य का उच्चारण उचित भी नहीं होता। अन्तिम अंक से विदूषक का निकल जाना प्रकरणकार की सुरुचि का परिचायक है, क्योंकि बुद्ध के उपदेश ग्रहण कर लेने के बाद शारिपुत्र को विदूषक जैसे मनोरंजक पात्र की जरूरत नहीं रह जाती। दोनों नायक बुद्ध और उसके शिष्य संस्कृत गद्य-पद्य में बोलते हैं। इन शिष्यों में कौंडिन्य और एक श्रमणक भी है। विदूषक प्राकृत में बोलता है।

जहाँ शारिपुत्र प्रकरण का उल्लेख है वहीं दो और रूपकों के भी अवशेष हैं। अनुमान किया जाता है कि उनका भी प्रणेता अश्वघोष ही होगा। पर इसके लिये कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। दूसरे रूपक के अवशेष में और अश्वघोष की अन्य कृतियों में सादृश्य पाया जाता है। यह सादृश्य केवल शैली में ही नहीं वरन् उपमा तक में पाया जाता है।

> 'खं वर्ष त्यम्बुधारां ज्वलति च युगपत् सन्ध्याभ्र इव'—(द्वितीयरूपक)
> युगपज्ज्वलन् ज्वलनवच्च जलमव सृजंश्च मेघवत् ।
> तप्त कनक सदृश प्रभया स बभौ प्रदीप्त इव सन्ध्यया घनः ॥
>
> सौन्दरनन्द ३–२४

यह नाटक एक खास तरह का है। बुद्धि, कीर्ति और धृति उसके पात्रों में से हैं। ये रंगमंच पर आकर बात चीत करती हैं। बुद्धि कीर्ति से कहती है—'नित्यं स सुप्त इव यस्य न बुद्धिरस्ति।' इस नाटक का अवशेष अति अल्प है अत: इसके बारे मे अधिक नहीं कहा जा सकता है। ऐसा नाटक दसवीं शताब्दी तक और कोई दूसरा नहीं मिलता। ग्यारहवीं शताब्दी में कृष्ण मिश्र ने इस तरह का 'प्रबोध चंद्रोदय' नामक एक नाटक लिखा था। बाद में बहुत से ऐसे नाटक लिखे गये।

दूसरे नाटक की तरह तीसरे के नाम का भी पता नहीं है। इसके पात्रों में मगधवती नाम की एक वेश्या कौमुद गन्ध नाम का एक विदूषक, शायद सोमदत्त नामक नायक, एक दुष्ट, धनञ्जय नामक एक राजकुमार एक दासी, शारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन हैं। वेश्या, दासी और दुष्ट प्राकृत में बोलते हैं और शेष संस्कृत में। एक जीर्ण उद्यान और वेश्या का घर नाटक के स्थान हैं और पात्र-गण प्रवहण में चढ़ते हुये बताए जाते हैं। इन बातों में यह नाटक मृच्छकटिक से मिलता-जुलता है। दूसरे नाटक की भांति इसका अवशेष भी बहुत कम प्राप्त है। अत: इसके बारे में अधिक कुछ नही कहा जा सकता। यह नाटक भी बौद्ध-धर्म विषयक है; इसमें सन्देह नहीं।

कृ धातु के प्रयोग का आधिक्य कहीं क्रिया तथा कहीं प्रातिपदिक के रूप में नवे सर्ग के तीसवें श्लोक मे प्रदर्शित किया है जोकवि की वैयाकरणता सिद्ध करता है।

क्षत्रियों को सम्बोधन करते हुए जिस प्रकार अर्जुन ने गीता में दैन्य दिखाया है, उसी प्रकार यहां भी भिक्षा वृत्ति करने वाले डरपोक क्षत्रियों को धिकारा गया है:—

> आक्षिप्त: शत्रुभि: संख्ये सुहृद्भिश्च व्यपाश्रित: ।
> अभवद्यो न विमुखस्तेजसा दित्सयैव च ॥ [सौ० २/५]

> कृतशास्त्र: कृतास्त्रो वा जातो वा विपुले कुले ।
> अकृतार्थो न ददृशे यस्य दर्शनमेयिवान् ॥
> [सौ० २/८]

स्वायंभुवं चार्चिकमर्चयित्वा जजाप पुत्रस्थितये स्थितश्रीः।
चकार कर्माणि च दुष्कराणि प्रजाः सिसृक्षुः कइवादिकाले॥
[बु० २/५१]

अश्वघोष के व्याकृति पूर्ण प्रयोग

सौन्दरनन्द के १२ वें सर्ग के १० वें श्लोक में अस् धातु का प्रयोग ३ तीनों कालों में किया गया है। जो पाणिनि के नियम से सिद्ध नहीं होता वहाँ लिखा है कि:—

"न तु कामात् मनस्तस्य केनचिज्जगृहे धृतिः।
त्रिषु कालेषु सर्वेषु निपातोऽस्तिरिव स्मृतः॥ (सौ०—१२/१०)

इसी प्रकार "भा" धातु का प्रयोग वि और उन् उपसर्ग के विना भी किया है। केवल इतना ही नहीं अपितु और ब्राह्मणों के भी किन्हीं अंशों का अनुकरण किया है। बुद्धचरित के

सशिष्यः कपिलश्चैव प्रतिबुद्ध इति स्मृतः।
सपुत्रः प्रतिबुद्धस्तु प्रजापतिरिहोच्यते॥ (बुद्धचरित १२—२१)

इस पद्य से श्वेताश्वरोपनिषद् का समय नहीं मिलता। अश्वघोष ने बुद्धसम्प्रदाय में प्रयुक्त कुछ साम्प्रदायिक शब्दों के अतिरिक्त सांख्य योग के भी पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है जो महाभारत के शान्ति पर्व में भी उपलब्ध होते हैं। कतिपय ऐसी संज्ञायें भी है जो महाभारत और बुद्धचरित में एक सी हैं। जैसे संक्रन्दन, माया, अन्वर, अवसंग, अर्थवन इप्रि वल्ली आदि। कुछ शब्द ऐसे हैं जो उन्होंने ऐच्छिक अर्थ में प्रयुक्त किये हैं।

जौन्सटन का कथन है कि अश्वघोष ने पाणिनि के धातुपाठ के बनने से पूर्व के नियमों का अनुसरण किया है। किन्तु यत्र-तत्र वह इन धातुओं के प्रयोगों में कुछ अन्तर कर देता है। अव् धातु का प्रसिद्ध अर्थ से भिन्न अर्थ में भी प्रयोग करता है।

अवेन्द्रवद्दिव्यव शश्वदर्कवद्गुणैरव श्रेय इहाव गामव ।
अवायुरार्यैरव सत्सुतानव श्रियश्च राजन्नव धर्ममात्मनः ॥
(बुद्धचरित ११—७०)

इसी प्रकार—

बभूव स हि संवेगः श्रेयसाज्ञस्य वृद्धये ।
धातुरेधिरिवाख्याते पठितोऽक्षर चिन्तकैः ॥
(सौ० १२/९)

उक्त श्लोक में उपमा द्वारा व्याकरण के नियमों का उल्लेख किया है। अगले दशवें श्लोक में उल्लिखित नियम पाणिनि के व्याकरण में नहीं है। सौन्दरानन्द में कहीं कहीं जान पड़ता है जैसे 'भट्टिकाव्य' की तरह काव्य के माध्यम से व्याकरण की शिक्षा दी गई है। इस विषय में सविस्तार अन्यत्र भी लिखा जा चुका है।

बुद्धचरित के सर्ग १३–४४वें पद्य में 'निर्जिगिलुः' 'शश्वसुः' 'उत्ससृपुः' 'चेलुः' इन प्रयोगों से एवं ४५वें 'तत्यजुः' ४६वें में 'निष्पपात' ४७वें में 'पेतुः' इत्यादि क्रियाओं के प्रयोग से बुद्ध के सामने जो घटनायें घटी थी उनका पूर्ण भूत कालीन प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि बुद्ध के संबुद्ध होने के कारण यह सब काम के दोष उनकी बुद्धि से सर्वथा परोक्ष थे। १५वें से लेकर २८वे सर्ग तक के काव्य की विवेचना उत्तर भाग के परिशिष्ट में की जायेगी।

सौन्दरनन्द मे—

अधर्मिष्ठामचकथन्न कथामकथकथः ।
चक्रवर्तीव च परान्धर्मायाभ्युदसीषहत् ॥ २–३२

राष्ट्रमन्यत्र च बलेर्न स किंचिददीदपत् ।
भृत्यैरेव च सोद्योगं द्विषद्दर्पमदीदपत् ॥ २–३३

स्वैरेवादीदपच्चापि भूयो भूयो गुणैः कुलम् ।
प्रजानादीदपच्चैव सर्वं धर्मं व्यवस्थया ॥ २–३४

अश्रान्तः समये यज्वा यज्ञभूमिममीमपत् ।
पालनाच्च द्विजान् ब्रह्म निरुद्विग्नानमीमपत् ॥ २–३५

गुरुभिर्विविधैस्कालैः सौम्यः सोमममीमपत् ।
तपसा तेजसा चैव द्विषत्सैन्यममीमपत् ॥ २-३६

सौन्दरनन्द के—

प्रणतानन्जग्राह विजग्राह कुल द्विषः ।
आपन्नान् परिजग्राह निजग्राहा स्थिताक्षाति ॥

में 'ग्रह' का सोपसर्ग प्रयोग वर्णित हुआ है। यह द्वितीय सर्ग ही सारा ऐसा ही है। १६-४८ भी ऐसा ही है, वही अत्यधिक अशुद्ध है।

वासुदेव विजय और युधिष्ठिर विजय में वैय्याकरण प्रयोगों का बाहुल्य है परन्तु अश्वघोष ने भी उक्त ३३वें पद्य में 'दा' धातु का 'कर-ग्रहण' अर्थ में प्रयोग किया है तथा पुनः 'दो अवखण्डने' से बनने वाली 'दा' धातु का प्रयोग किया है। पुनः ३४वें पद्य में 'दीपीदीप्तौ' धातु का प्रयोग करते हुये 'अदीपिपत्' प्रयोग बनाया है। जिसे 'अदीदपत्' के रूप में प्रयोग किया है। परन्तु यदि इसे 'दैप् शोधने' का प्रयोग माना जाय तो यह प्रयोग बनता है। इसी प्रकार चौथी बार 'अदीदपत' का प्रयोग "संतप्त करने" के अर्थ में किया है वह भी 'दो अवखण्डने' का है। ३५वें में 'माङ् माने' का 'अमीमपत्' द्वारा इसी 'माङ् माने' का प्रमाण या ज्ञान अर्थ में प्रयोग किया है उपसर्ग नहीं लगाया। तीसरी बार ३६वें श्लोक में 'मा' धातु का तोलने के अर्थ में प्रयोग किया है चौथी बार 'मेङ् हिंसायाम्' धातु से शत्रुओं के मारने के अर्थ में 'अमीमपत्' प्रयोग किया है। इसी प्रकार से ३७वें में वस् आच्छादने और वस् निवासे का प्रयोग है और 'अवीवसन' रूप बनाया है। भस् धातु का भस्म करना अर्थ और भास् धातु का दीप्त करना अर्थ है। दोनों धातुओं का पद्य ३७वें में 'अबीभसन्' प्रयोग बनाया है। ये प्रयोग उसके व्याकरण शास्त्र के गम्भीर ज्ञान के परिचायक हैं। नन्द के नेत्रों का सौन्दर्य वर्णन करते हुये २-५८ में उसे 'वृषभेक्षण' लिखा है। यद्यपि हमें यह उपमान कुछ अट-पटा सा लगता है क्यों कि कवि सम्प्रदाय में मीन और खंजन का तो नेत्रो-पमानत्व प्रसिद्ध है। बैल का नहीं। बैल के नेत्रों का सौन्दर्य भी उस जमाने में प्रसिद्ध था यह इससे सिद्ध होता है। नन्द इतना सुन्दर था कि उसका उपनाम सुन्दर रखा गया अतएव आगे चल कर वह 'सुन्दरनन्द' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पारियात्र नामक पर्वत की सत्ता संदिग्ध नहीं तो अन्वेषणीय अवश्य है। जो कि सौन्दरनन्द के २-६२ में वर्णित है।

"अश्वघोष और महाभारत"

सौन्दरनन्द और बुद्धचरित मे जो लिट् लकार का प्रयोग किया है वह महाभारत के आदि पर्व के तीसवें अध्याय मे वर्णित—

अभूतपूर्वं सग्रामे तदा देवासुरेऽपि च।
ववुर्वाता. सनिर्घाता. पेतुरुल्का: सहस्रश. ॥ ३५ ॥

निरभ्रमेव चाकाश प्रजगर्ज महास्वनम्।
देवानामपि यो देव सोऽप्यवर्षत् शोणितम् ॥ ३६ ॥

मम्लुर्माल्यानि देवानाँ नेशुस्तेजासि चैव हि।
उत्पातमेघा रौद्राश्च ववृपु शोति वहु ॥ ३७ ॥

आस्तीक पर्व के उक्त पद्यों की प्रतिच्छाया स्वरूप है। इसी प्रकार सौन्दरनन्द सातवें सर्ग के २८वें श्लोक से ४८वे श्लोक तक जो वर्णन किया गया है वह महाभारत के भिन्न भिन्न पर्वों मे वर्णित कथाओं के आधार पर है। ऋष्यश्रृंग वशिष्ठ, पराशर, माद्री और पाण्डु आदि नामों की चर्चा महाभारत मे वर्णित प्रसंगों से मिलती है।

अश्वघोप धर्म के अविरोधी सौन्दर्य को महत्व प्रदान करते हैं। उनकी दृष्टि मे सौन्दर्य धर्म में बाधक न होता हुआ उसकी अभिवृद्धि मे सहायक होना चाहिये। इस तथ्य की पुष्टि मे उन्होंने नन्द की निर्वाण-प्राप्ति में सुन्दरी के सौन्दर्य को बाधक नहीं सिद्ध किया किन्तु विवेक के द्वारा शरीर का विश्लेपण करते हुये उसे वैराग्य का हेतु बतलाया है। इस प्रकार काव्य का जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' स्वरूप है, इन तीनों रूपों की या परमात्मप्राप्ति की सत्यता, संसार के कल्याण की वुद्धि और सांसारिक-सौन्दर्य में अनासक्ति भाव इन तीनों साधक-तत्वों की पुष्टि उसने सौन्दरनन्द में की है। वह लिखता है कि—

भवत्यरूपोऽपिहि दर्शनीय: स्वलकृत: श्रेष्टतमैर्गुणै: स्वै:।
दोपै. परीतो मलिनीकरैस्तु सुदर्शनोऽप्यस्ति विरूपएव॥
सौन्दरनन्द १८/४०

'महाभाष्य और अश्वघोष'

महाभाष्य के ४/१/३ सूत्र के भाष्य में ६ प्रकार के भावों का वर्णन किया गया है। वे लिखते हैं कि—

"षड्भिः प्रकारैः सतां भावानामनुपलब्धिर्भवति ।"

ये ६ भाव विकार अश्वघोष ने शरीर के विषय में घटित किये हैं। 'सांख्यकारिका कार' ने जिन अनुपलब्धि के हेतुओं का—

अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् ।
सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात्समानाभिहाराच्च ॥

इस कारिका द्वारा वर्णन किया है। इनमें से अश्वघोष ने आत्मा की अनुपलब्धि में अज्ञानकृतअतिदूरत्व स्वीकार किया है, जिसके हट जाने से 'बुद्धत्व' प्राप्ति होती है। चित्ररथ और वाल्हीक इन दो देशों का नाम अश्वघोष ने अपने काव्य में और महाभाष्यकार ने २/२/३१ सूत्र के भाष्य में लिया है। जिससे सिद्ध है कि अश्वघोष पर पाणिनीय व्याकरण की पर्याप्त छाप है। 'वाल्हीक' को आजकल "बलख-बुखारा" कहते हैं और चित्ररथ देश आज का "चित्राल" है। 'सह्य' पर्वत कोयम्बटूर के पास है। चित्रकूट पर्वत की आवली वहाँ तक फैली हुई है।

कालिदास और अश्वघोष

कालिदास ने जिस 'अर्थान्तर न्यास' का पद पद पर प्रयोग किया है वह अश्वघोष की कृतियों में कठिनाई से ही ढूँढ़ा जा सकता है। कहीं कहीं प्रत्येक पाद में यमक है। जैसे—

तेदतदाज्ञाय विपाप्यनात्मना विमोक्षधर्माद्युपसंहितं हितम् ।
जुषस्व मे सज्जनसंमतं मतं प्रचक्ष्व वा निश्चयमुद् गिरन्गिरम् ॥
(सौ० ९—४९)

अनेन दष्टो मदनाहिना हि ना,
न कश्चिदात्मन्यनवस्थितः स्थितः ।
मुमोहवोध्यौह्यचलात्मनो मनो,
बभूव धीमाश्च स शन्तनुस्तनुः ॥
सौ० १०—५१

स्थिते विशिष्टे त्वयि संश्रये श्रये,
यथा न यामीह वसन्दिश दिशम् ।
यथा च लब्धा व्यसनक्षय क्षयम्,
व्रजामि तन्मे कुरु शसतः सतः ॥
सौ० १०—५७

कहीं कहीं सम्पूर्ण पाद की आवृत्ति हुई है। एवं कहीं कहीं तो सम्पूर्ण श्लोक ही दुहराया गया है, पर इसमें कुछ चमत्कार नहीं है।

हविषु यश्च स्वात्मार्थं गामधुक्षद्वसिण्ठवत् ।
तपः शिष्टेपु शिष्येपुगामधु क्षद्वसिण्ठवत् ॥
सौ० १—३

दीपो यथानिर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिंगच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश न काचिद्विदिशं न कांचित्स्नेहक्षयात्केवलमेति शान्तिम् ॥ १६/२८

एव कृती निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम् ।
दिश न कांचिद्विदिश न कांचित्क्लेशक्षयात्केवलयेतिशान्तिम् ॥ १६/२९

यह प्रसिद्ध है कि निम्न पद्य ही 'मन्दाक्रान्ता' का पूर्व रूप है।

तस्माद्भिक्षार्थं मम गुरुरितो यावदेव प्रयात—
स्त्यक्त्वा काषायं गृहमहमितस्तावदेव प्रयास्ये ।
पूज्यं लिङ्गं स्खलितमनसो विभ्रतःक्लिष्ट बुद्धे—
र्नामुत्रार्थं स्यादुपहतमतेर्नाप्ययं जीवलोकः ॥
सौ० ७/५२

संभव है इसीका उपयोग करके शिला लेखक हरिषेण कवि या महाकवि कालिदास ने या दोनों ने ही अलग अलग 'मन्दाक्रान्ता' का अविष्कार किया हो।

अश्वघोष और कालिदास की रचना में भी शब्दों और अर्थों में समानता पाई जाती है।

अश्वघोष	कालिदास
ता सुन्दरी चेन्न लभेत नन्दः, सा वा निषेवेत न तं नतभ्रूः। द्वन्द्वं ध्रुवं तद्विकलं न शोभे— तान्योन्यहीनाविव रात्रिचन्द्रौ ॥ सौ० ४/७	परस्परेण स्पृहणीयशोभम् न चेदिदं द्वन्द्वमयोजयिष्यत्। अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां वितथोऽभविष्यत् ॥ कुमार ७/६६
तं गौरवं वुद्धगतं चकर्ष, भार्यानुरागः पुनराचकर्ष। सोऽनिश्चयान्नापिययौनतस्थौ, तरस्तरंगेष्विव राजहंसः ॥ सौ० ४/४२	मार्गाचलव्यतिकरा— कुलितेव सिन्धुः। शैलाधिराजतनया नययौ न तस्थौ। कुमार० ४/८५
हतत्विषोऽन्याः शिथिलांसबाहवः। स्त्रियो विषादेन विचेतना इव ॥ बु० च० ८/२५	निशीथदीपाः सहसाहतत्विषो वभूवुरालेख्य समर्पिता इव। रघु० ३/१५
आदित्यपूर्वं विपुलं कुलं ते नवं वयो दीप्तमिदं वपुश्च। बु० च० १०/२३	एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वम् नवं वयः कान्तमिदं वपुश्च। रघु० २/४७
मोघं श्रमं नार्हसि मार कर्तुम्। बु० च० १३/५७	अलं महीपाल तव श्रमेण। रघु २/३४
प्रमदानाम गतिर्न विद्यते। सौ० ८/४४	मनोरथानामगतिर्न विद्यते। कुमार० ५/६४

कालिदास के अतिरिक्त वाण ने भी अश्वघोष से उपमाएँ ली हैं:—

अश्वघोष	वाण
निराश्रयस्य——इवाम्वरस्य। सौ० १०/६	वियन्मयीमिव निरवलम्वतया। हर्षचरित
मलं जले साधुरिवोज्जिहीर्षुः। सौ० १०/३	स्नेह मलमिदममलैः— अम्वुभिः क्षालयितुम्। हर्षचरित

कहीं कहीं उपनिषद् वाक्य का भी शब्दश: अनुवाद दिखाई देता है। जैसे:—

स यथा शकुनि सूत्रेण प्रवद्धो दिशं दिशं पतित्वान्यत्राय-
तनमलब्ध्वा बन्धनमेवोपश्रयते।

छान्दोग्य उप० ६/८/२

सूत्रेण वद्धो हि यथा विहङ्गो व्यावर्तते दूरगतोऽपि भूय.।
अज्ञान सूत्रेण तथावबद्धो गतोऽपिदूरं पुनरेति लोक:॥

सौ० ११/५९

इसी प्रकार रघुवंश के सप्तम सर्ग में किया गया महिला-वर्णन और बुद्धचरित के तृतीय सर्ग का स्त्री-वर्णन, रघुवंश के छठे सर्ग का अज दर्शन और बुद्धचरित के प्रथम सर्ग का सिद्धार्थ-दर्शन, बुद्धचरित के १३वें सर्ग का काम-सेना-वर्णन और कुमार सम्भव के तृतीय सर्ग का कामदाह-वर्णन, यशोधरा-विलाप और रति-विलाप, विचारों, भावों और वर्णनों में साम्य रखता है किन्तु अश्वघोष के वर्णन मे वेगयुक्तता, प्रवाहहीनता और अपरिष्कृतता है जब कि कालिदास के वर्णन मे स्वाभाविकता परिष्कृतता, हृदयस्पर्शिता और उदात्तता स्पष्ट लक्षित होती है। दोनों कवियों ने वैदर्भी शैली अपनाई है। उपमा-योजना में अश्वघोष कालिदास से कम नहीं तथा करुण-रस के वर्णन में तो वे कालिदास से भी दो पग आगे हैं। नाटकीय-कला 'शारिपुत्र-प्रकरण' मे उतनी विकसित नहीं हुई है जितनी 'शकुन्तला' में। यह संस्कृत-जगत् का दुर्भाग्य है कि—'शारिपुत्र-प्रकरण' अत्यधिक खण्डित उपलब्ध हो रहा है जिससे कथा-सन्दर्भ का केवल अनुमान किया जा सकता है। यह शारद्वती-पुत्र कौन सा था जिसका संक्षेप शारि-पुत्र के नाम से कवि ने सन्दब्ध किया है, यह विषय आज भी अन्वेपण का बना हुआ है। काल की दृष्टि से ऐसा लगता है कि अश्वघोप और कालिदास समकालीन होने पर भी कालिदास की उत्पत्ति के पूर्व अश्वघोष की उत्पत्ति हुई थी।

अश्वघोष की प्राकृत

शौरसेनी, महाराष्ट्री आदि प्राकृत के भेदों में अश्वघोष ने 'शारिपुत्र प्रकरण' में महाराष्ट्री-प्राकृत का विशेष आश्रय लिया है। महाराष्ट्री प्राकृत में यकार का लोप कर दिया जाता है और उसकी जगह केवल अकार का प्रयोग होता है जैसे—यदि शय (हाथ) की प्राकृत बनानी होगी तो 'सअ' लिखा जायेगा। इसी प्रकार 'इव' के स्थान पर 'विअ' का प्रयोग होगा जो कि 'शारिपुत्र प्रकरण' में अधिक पाया जाता है। संस्कृत के नाटकों में प्राकृत का बाहुल्य मृच्छकटिक और वेणी-संहार में मिलता है। मृच्छकटिक की शौरसेनी प्राकृत है। वेणीसंहार में महाराष्ट्री और शौरसेनी का मिश्रण है। महाराष्ट्री प्राकृत सर्वोत्कृष्ट मानी गई है जैसा कि दण्डी ने लिखा है कि:—

"महाराष्ट्राश्रया भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।"

(काव्यादर्श १–३५)

गरुडवहो (गरुड़ वधः) महाराष्ट्री प्राकृत का उत्कृष्ट काव्य है। प्राकृत भाषा के विकास का प्रमुख कारण प्रयत्न लाघव या मुखसुख है। वातावरण का प्रभाव भी इसमें सहकारि कारण बन जाता है। महाराष्ट्री व शौरसेनी के पद्यों में निम्नलिखित विशेषताएँ समान हैं—

(क) समस्त पद के उत्तर पद का प्रथमाक्षर लुप्त होता है—
जैसे राम प्रिय=लाम इज। आर्य पुत्र=अज्ज उत्त।

(ख) तकार को चकार हो जाता है—

तस्य=चस्स। प्रणमति=पनमदि (शौरसेनी) या पनमइ (महाराष्ट्री) अथ=अध (शौ०) अह (महा०)

इस प्रकार लक्षण देखने से "शारिपुत्र प्रकरण" उत्तम कोटि की प्राकृत का उदाहरण है यदि यह खण्डित न होता तो बड़ा ही अच्छा होता। विषयान्तर के भय से इस पर विशेष विचार नहीं किया है। प्राकृत के विशेष ज्ञान के लिए प्रियवर डा० कपिलदेव द्विवेदी कृत शाकुन्तल नाटक का परिशिष्ट देखना चाहिए।

सौन्दरनन्द के सुभाषित

१ नतश्च भक्त श्चनियोगमर्हति ।
२ सुखविरागत्व मसक्त वृद्धैः ।
३ जातोऽसि दिष्टया मम दर्शनीयः ।
४ प्रज्ञात्मकं यस्यहिनास्ति चक्षुः—
चक्षुर्न तस्यास्ति स चक्षुषोऽपि ॥
५ श्रुतोन्न तस्यापि हि नास्ति वृद्धि.—
नोत्पद्यते श्रेयसि यस्य वृद्धिः ।
७ भ्रष्टस्य धर्मात् पितृभि र्निपाताद् ।
अश्लाघनीयो हि वुधो पदेशः ॥
८ यावत् सतर्षः पुरुषो हि लोके ।
तावत् समृद्धोऽपि सदा दरिद्रः ॥
९ दुःखं हि शेते शयनेऽप्युदारे,
दु.खाग्निना चेतसि दह्यमान. ॥
१० शूरोऽप्यशूरः सहि वेदि तव्यः—
दोषै रमित्रैरिव हन्यते यः ॥
११ यास्यामि निष्ठामिति बालिशो हि ।
जन्मक्षयात् त्रासमिहाम्युपैति ॥
१२ कृतश्रुतो विप्रति पद्य मानः
निन्द्योहि निर्वीर्य इवात्त शस्त्रः ॥
१३ शीतं ह्रदं घर्म इवाऽवतीर्णः ।
प्राज्ञेन दोषेष्वपि वर्तितव्यम् ॥
१४ वला वले चात्मनि संप्रधार्य ।
कार्यः प्रयलो ननुतद्विरुद्धः ॥
१५ शुचीहि शीले पुरुषस्यदोषाः ।
मनः सलज्जा इव धर्णयन्ति ॥
१६ सर्वौषधीनामिवभूर्भवाय ।
सर्वापदां क्षेत्र मिदं हि जन्म ॥
१७ भवाद्भ्रुवं याति न शान्तिमेति ।
संसार दोला मविरुह्यलोकः ॥
१८ निलीन इव हि व्याघ्रः कालो विश्वासघातकः ।
१९ मृत्युः सर्वास्ववस्थासु हन्ति नावेक्षते वयः ।

४३ अस्थि चर्म वसा मांस मालमूत्र मयं वपु. ।
प्रतिमन् पश्यतो लोके देहासक्तिर्न जायते ॥

४४ कार्पण्य वचन पाप पापं धर्मस्य घातनम् ।

४५ पत्नी पतिर्वा महिषी पतिं वा परस्पर न व्यभिचेरतुश्च ।

× × ×

४६ वेदोपदिष्टं सममात्मजं च सोमं पपौ शान्ति सुच च हार्दम् ॥

× × ×

४७ उद्यानभूमौ हि कुतो रतिर्मे जराभये चेतसि वर्तमाने ॥

× × ×

४८ हीनस्य मध्यस्य महात्मनो वा सर्वस्य लोके नियतो विनाश. ॥

× × ×

४९ जानन्विनाशं कथमार्तिकाले सचेतनः स्यादिह हि प्रमत्त. ॥

× × ×

५० पुरुषस्य वय.सुखानि भुक्त्वा रमणीयो हि तपोवन प्रवेश. ॥

× × ×

५१ तत्रापि तोपो हृदि केवलोऽयं न पावयिष्यन्ति हि पापमापः ॥

× × ×

५२ धर्मे स्थिता पूर्वयुगानुरुपे सर्वे भवन्तो हि महर्षिकल्पाः ॥

× × ×

५३ प्रहीण दोषत्वमवेहि चाप्ततां प्रहीणदोषो ह्यनृतं न वक्ष्यति ॥

× × ×

५४ तत्त्वं विदित्वैवमनर्थं भीरुः प्राज्ञः स्वयं कोऽभिलषेदनर्थम् ॥

× × ×

५ तुष्टौ च सत्यां पुरुपस्य लोके सर्वे विशेषा ननु निर्विशेपाः ॥

अश्वघोष के चमत्कार पूर्ण वर्णन

संसार में रहो संसार से हटने को

यथा मनुष्यो मलिनं हि वासः क्षारेण भूयो मलिनीकरोति ।
मलक्षयार्थं न मलोद्भवार्थं रजस्तथास्मै मुनिराचकर्ष ॥
सौ० सर्ग १०/४२

जैसे कपड़े पर रेह लगाकर उसे साफ करते हैं—वैसे ही रजोगुण की कामादि प्रवृत्ति काम निवृत्ति को होती है।

मत्वा ततो नन्दमुदीर्णरागं भार्यानुरोधादपवृत्तरागम् ।
रागेण रागं प्रतिहन्तुकामो मुनिर्विरागो गिरमित्युवाच ॥
सौ० सर्ग १०/४७

नन्द का प्रेम उसकी अपनी पत्नी से था—बुद्ध मुनि ने उसे ही लक्ष्य बनाकर उपदेश दिया।

कामेष्वनैकान्तिकता च यस्मादतोऽपि मे तेषु न भोगसंज्ञा ।
य एव भावा हि सुखं दिशन्ति त एव दुःखं पुनरावहन्ति ॥
बुद्ध सर्ग ११/४१

काम की तृप्ति में सुख कहाँ ? यदि होता तो भोगने से सुख ही सुख होता, पर ऐसा देखा नहीं जाता।

गुरूणि वासांस्यगुरूणि चैव सुखाय शीते ह्यसुखाय घर्मे ।
चन्द्रांशवश्चन्दनमेव चोष्णे सुखाय दुःखाय भवन्ति शीते ॥
बुद्ध सर्ग ११/४२

देखो गरम कपड़े में यदि सुख होता तो ग्रीष्म ऋतु में भी होता इसी प्रकार चन्दन में सुख होता तो जाड़ों में भी वह सुखदायक होता। यही हाल वनिता व अन्य भोग्य पदार्थों का है।

इष्टं हि तर्षप्रशमाय तोयं क्षुन्नाशहेतोरशनं तथैव ।
वातातपाम्ब्वावरणाय वेश्म कौपीन शीतावरणाय वासः ॥
बुद्ध सर्ग ११/३७

अपिच-मकान धूप व वर्षादि से वचने को कपड़ा शीतातपनिवारण एवं नग्नता निवृत्ति आदि को है फिर मकान व कपड़ों से भोग कैसा ?

निद्राविघाताय तथैव शय्या यानं तथाध्वश्रमनाशनाय ।
तथासनं स्थानविनोदनाय स्नानं मृजारोग्वबलाश्रयाय ॥
वुद्ध सर्ग ११/३८

पलङ्ग पर सोना निद्रा दोष के हटाने को, बैठना खड़े खड़े टाँगों की थकावट हटाने को, सवारी चलने की थकावट हटाने को तथा ललनालिङ्गन कामव्याकुलता हटाने को, फिर इनमें सुख भोग कैसा ?

दु:खप्रतीकारनिमित्तभूतास्तस्मात्प्रजानां विषया न भोगा: ।
अश्नामि भोगानिति कोऽभ्युपेयात्प्राज्ञ: प्रतीकारविधौ प्रवृत्त ॥
वुद्ध सर्ग ११/३९

ये मालती (जुही या पीली चमेली) के बने स्रगादि भोग केवल दु:ख प्रतीकार के उपाय हैं इन्हें भोग कहना वेवकूफी है ना समझी ही है क्यों कि:—

य: पित्तदाहेन विदह्यमान: शीतक्रियां भोग इति व्यवस्येत् ।
दु:ख प्रतीकारविधौ प्रवृत्त. कामेषु कुयत्सि हि भोगसञ्ज्ञाम् ॥
वुद्ध सर्ग ११/४०

बुखार की शिद्दत व गर्मी को दूर करने के लिए किए गये उपचार को कोई भोग नहीं मानता न कहता फिर भला काम वासना के निवृत्ति साधनों को भोग मानना या कहना कहाँ तक ठीक है, जरा सोचिये तो सही ।

कामाभिभूता हि न यान्ति शर्म त्रिपिष्टये किं वत मर्त्यलोके ।
कामै: सतृष्णस्य हि नास्ति तृप्तिर्यथेन्धनैर्वातसखस्यवह्ने: ॥
वुद्ध सर्ग ११/१०

कामी को यदि तीनों लोकों की भी ललनायें मिल जांय तो भी सुख न मिलेगा फिर भला तृष्णा निवृत्ति विना सुख भी कहाँ ?

तीव्रैः प्रयत्नैर्विविधैरवाप्ताः क्षणेन ये नाशमिह प्रयान्ति ।
स्वप्नोपभोगप्रतिमेषु तेषु कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ॥

बुद्ध० ११/२९

यानर्जयित्वापि न यान्ति शर्म विवर्धयित्वा परिपालयित्वा ।
अङ्गारकर्षूप्रतिमेषु तेयु कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ॥

बुद्ध० ११/३०

कर्षू=चिमटा या काँचा, जिसे अँग्रेजी में forks कहते हैं । अन्य पदों की सरल होने से व्याख्या नही की गई ।

विनाशमीयुः कुरवो यदर्थं वृष्ण्यन्धका मेखकलदण्डकाश्च ।
सूनासिकाष्ठप्रतिमेषु तेतु कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ॥ बुद्ध ११/३१

कौरव पाण्डव राज्य भोग, द्रौपदी अपमान, द्यूत व्यसन के कारण नष्ट हो गए फिर इन सूना (वध्य शाला) तलवार और बकरे काटने के खूँटे जैसे कामों में कौन रमे ।

सुन्दोपसुन्दावसुरौ यदर्थमन्योन्यवैरप्रसृतौ विनष्टौ ।
सौहार्दविश्लेषकरेपु तेपु कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ॥

बुद्ध० ११/३२

इस पद्य में मोहिनी अवतार की ओर संकेत है ।

येषां कृते वारिणि पावके च क्रव्यात्सु चात्मानमिहोत्सृजति ।
सपत्नभूतेष्वशिवेपु तेषु कामेषु कस्यात्मवतो रतिः स्यात् ॥ बुद्ध ११/३३

पानी में सौगन्धिका हरण के लिए भीम घुसा था, वाणासुर कन्या के विवाह में कृष्ण ने गरुड़ सहित पावक प्रवेश किया था, नल-दमयन्ती उपाख्यान में, सावित्री उपाख्यान में, व सीतोपाख्यान में, क्रव्यादों से टक्कर ली गई थी फिर ऐसे दुःखद कामों में कौन समझदार अनुराग करेगा ।

मृत्यु की विभीषिका

यावच्च हिंस्रः समुपैति कालः शमाय तावत्कुरु सौम्य ! बुद्धिम् ।
सर्वास्ववस्थास्विह वर्तमानं सर्वाभिसारेण निहन्ति मृत्युः ॥
सौन्दरनन्द सर्ग ५/२२

जरा (बुढ़ापे) के दोषों का दिग्दर्शन

जरासमा नास्त्यमृजा प्रजानां व्याधेः समो नास्ति जगत्यनर्थः ।
मृत्योः समं नास्ति भयं पृथिव्यामेतत्त्रयं खल्ववशेन सेव्यम् ॥
सौन्दरनन्द सर्ग ५/२६

\+ \+ \+

विवर्णितश्मश्रु वलीविकुञ्चितं विशीर्णदन्तं शिथिलभ्रु निष्प्रभम् ।
यदा मुखं द्रक्ष्यसि जर्जरं तदा जराभिभूतो विमदो भविष्यसि ॥
सौन्दरनन्द सर्ग ९/२९

यथेक्षुरत्यन्तरसप्रपीडितो भुवि प्रविद्धो दहनाय शुष्यते ।
तथा जरायन्त्रनिपीडिता तनुर्निपीतसारा मरणाय तिष्ठति ॥
सौन्दरनन्द सर्ग ९/३१

स्मृतेः प्रमोषो वपुषः पराभवो,
रतेः क्षयो वाक्श्रुतिचक्षुषां ग्रहः ।
श्रमस्य योनिर्बलवीर्ययोर्वधो
जरासमो नास्ति शरीरिणां रिपुः ॥
सौन्दरनन्द सर्ग ९/३३

शरीरमीदृग्बहुदुःखमध्रुवम्
फलानुरोधादथ नावगच्छसि ।
द्रवत्फलेभ्यो धृतिरश्मिभिर्मनो
निगृह्यतां गौरिव सस्यलालसा ॥
सौन्दरनन्द सर्ग ९/४२

शरीर की क्षण भङ्गुरता

इदं हि रोगायतन जरावश नदीतटानोकहवच्चलाचलम् ।
न वेत्सि देह जलफेनदुर्बल बलिष्ठता मात्मनि येन मन्यसे ॥

सौन्दरनन्द सर्ग ९/६

+ + +

शरीरमामादपि मृन्मयाद्घटा
दिद तु नि सारतम मत मम ।
चिर हि तिष्ठेद्विधिवद्धृतोधट·
समुच्छ्रयोऽयं सुधृनोऽपिभिद्यते ॥

सौन्दरनन्द सर्ग ९/११

यह शरीर तो घड़े से भी गया बीता है। सम्हाल के रक्खो तो घड़ा हजारों साल तक रक्खा जा सकता है—पर शरीर कितना ही सम्हालो विना विगड़े न रहेगा।

+ + +

यदा हिमार्तो ज्वलन निषेवते,
हिमनिदाघाभिहतोऽभिकाङ्क्षति ।
क्षुधान्वितोऽन्न सलिल तृषान्वितो,–
बल कुत. किं च कथ च कस्य च ॥

सौन्दरनन्द सर्ग ४/१५

अपां द्रवत्वं कठिन्त्वमुर्व्या वायोश्चलत्वं ध्रुवमौष्ण्यमग्ने ।
यथा स्वभावो हि तथा स्वभावो दु ख शरीरस्य च चेतसश्च ॥

सौन्दरनन्द सर्ग १६/१२

शरीर का दुःख प्राप्त करना जल के द्रवत्वादि के समान सहज गुण है—फिर यह कैसे इससे छूट सकता है।

आत्मानन्द

वसञ्शून्यागारे यदि सततमेकोऽभिरमते
यदि क्लेशोत्पादैः सह न रमते शत्रुभिरिव ।
चरन्नात्मारामो यदि च पिबति प्रीतिसलिलं
ततो भुङ्क्ते श्रेष्ठ त्रिदशपतिराज्यादपि सुखम् ॥

+ + + सौ० सर्ग १४/५२

बुद्ध द्वारा अभिनिष्क्रमण के समय अन्तःपुर प्रवेश

व्यपविद्धविभूषण स्रजोऽन्या विसृतग्रन्थनवाससो विसंज्ञाः ।
अनिमीलितशुक्ल निश्चलाक्ष्यो न विरेजुः शयिता गतासुकल्पाः ॥ बुद्ध ५/६०

विवृतास्यपुटा विवृद्धगात्री प्रपतद्वक्त्र जला प्रकाशगुह्या ।
अपरा मदघूर्णितेव शिश्ये न बभासे विकृत वपुः पुपोष ॥ बुद्ध ५/६१

इति सत्त्वकुलान्वयानुरूपं विविधं स प्रमदाजन. शयानः ।
सरसः सदृश बभार रूप पवनावर्जितरुग्णपुष्करस्य ॥ बुद्ध ५/६२

समवेक्ष्य तथा तथा शयाना विकृतास्ता युवतीरधीरचेष्टाः ।
गुणवद्वपुषोऽपि वल्गुभाषा नृपसूनुः स विगर्हयाँबभूव ॥ बुद्ध ५/६३

अशुचिर्विकृतश्च जीवलोके वनितानामयमीदृशः स्वभावः ।
वसनाभरणैस्तु वञ्च्यमानः पुरुष. स्त्रीविषयेषु रागमेति ॥ बुद्ध ५/६४

विमृशेद्यदि योषितां मनुष्यः प्रकृतिं स्वप्नविकारमीदृशं च ।
ध्रुवमत्र न वर्धयेत्प्रमादं गुणसङ्कल्पहतस्तु रागमेति ॥ बुद्ध ५/६५

बुद्ध ने रात्रि में देखा कि कोई स्त्री मुँह फाड़े पड़ी थी, किसीकी आँखें फटी थीं, किसीकी तोंद निकल रही थी, किसी के मुख से लालास्राव हो रहा था, कोई शराब पिये हुए नंगी पड़ी थी, भला ऐसी विकृत एवं बीभत्स शरीर वाली स्त्रियों के साथ कौन विचार शील संगमाभिलाषी होगा ।

रमणी-रामणीयक चित्तवृत्ति

सविषा इव संश्रिता लता: परिमृष्टा इव सोरगा गुहा: ।
विवृता इव चासयो धृता व्यसनान्ता हि भवन्ति योषित. ।। सौ० ८/३१

स्वजन: स्वजनेन भिद्यते सुहृदश्चापि सुहृज्जनेन यत् ।
परदोषविचक्षरणा: शठास्तदनार्या: प्रचरन्ति योषित: ।। सौ० ८/३३

वचनेन हरन्ति वल्गुना निशितेन प्रहरन्ति चेतसा ।
मधु तिष्ठति वाचि योषितॉ हृदये हालहलं महद्विषम् ।। सौ० ८/३५

न वपुर्विमृशन्ति न श्रिय न मति नापि कुलं न विक्रमम् ।
प्रहरन्त्यविशेषत: स्त्रिय: सरितो ग्राहकुलाकुला इव ।। सौ० ८/३७

न वचो मधुरं न लालनं स्मरति स्त्री न च सौहृदं क्वचित् ।
कलिता वनितैव चञ्चला तदिहारिष्विव नावलम्ब्यते ।। सौ० ८/३८

अददत्सु भवन्ति नर्मदा: प्रददत्सु प्रविशन्ति विभ्रमम् ।
प्रणतेषु भवन्ति गर्विता: प्रमदांस्तृप्ततराश्च मानिषु ।। सौ० ८/३९

गुणवत्सु चरन्ति भर्तृवद् गुणहीनेषु चरन्ति पुत्रवत् ।
धनवत्सु चरन्ति तृष्णया धनहीनेषु चरन्त्यवसया ।। सौ० ८/४०

विषयाद् विषयान्तर गता प्रचरत्येव यथा हतापि गौ: ।
अनवेक्षित पूर्व सौहृदा रमतेऽन्यत्रगता तथाङ्गना ।। सौ० ८/४१

फिर बुद्ध के विचार में आया कि स्त्री संसर्ग व्यसनि या दु.खोदर्क का ही हेतु है । ये भाई को भाई से लड़वा दे, दो चूल्हे करवा दे एक की जगह । इनका हृदय और वचन एक सा नहीं होता । प्रतिकूल को अनुकूल करना, अनुकूल को बहकाना, विनीत को ठुकराना अभिमानी के समक्ष सतराना, गुणी की सेवा करना, गुणहीन को नचाना, धनवान् को आकृष्ट करना, निर्धन को दुत्कारना यह स्त्री स्वभाव सिद्ध सहज गुण है ।

सीमन्तिनी शरीर विवेचन

अथ सूक्ष्ममतिद्वयाशिवं लघु तासाँ हृदयं न पश्यसि ।
किमु कायमसद्गृहं स्रवद्वनितानामशुचिं पश्यसि ।। ८/४८

ऐ! दिल! स्त्री हृदय की क्षुद्रता को समझ, तथा प्रतिक्षण स्रावी अशुचि मार्ग के लिए लालायित मत बन ।

यदहन्यहनि प्रधावनैर्वसनैश्चाभरणैश्च संस्कृतम् ।
अशुभं तमसावृतेक्षणः शुभतो गच्छसि नावगच्छसि ॥ ८/४८

यदि कोई अच्छे कपड़े, गहने पहिन कर नजाकत की चाल से चलता सामने से निकल जाता है तो तू बेताब बन जाता है यह ठीक नहीं।

अथवा समवैपि तत्तन् मशुभा त्व न तु संविद स्तिते ।
सुरभि विदधासि हि क्रियामशुचेस्तत्प्रभवस्य शान्तये ॥ ८/४९

तू प्रमदा-शरीर को या अपने शरीर को वस्तुतः अशुचि मानता है फिर उसपर सुगन्धित तैल लगाकर तैल का भी दुरुपयोग क्यों करता है, भला इत्र के छिड़कने से क्या कूड़े के ढेर या बमपुलिस की पवित्रता या सुगन्धि संभव है? कदापि नहीं।

अनुपलेपनमञ्जनं स्रजो मणिमुक्तातपनीयमंशुकम् ।
यदि साधु किमत्र योषिता सहज तासु विचीयतां शुचि ॥ ८/५०

चन्दन, अञ्जन, मोतियों का हार, रेशमी धोती, लाल दुपट्टा इनमें सौन्दर्य उपकरणों का है, शरीर का निजी सौन्दर्य नाम को भी नहीं।

स्रवतीमशुचिं स्पृशेच्च कः सघृणो जर्जरभाण्डवत्स्त्रियम् ।
यदि केवलया त्वचावृता न भवेन्मक्षिकपत्रमात्रया ॥ ८/५२

कौन घृणावान् व्यक्ति जीर्ण शीर्ण पात्र के समान झरती हुई अपवित्र स्त्री के शरीर का स्पर्श करेगा, यदि वह स्त्री का शरीर केवल मक्षिका के पङ्ख के समान पतली त्वचा से आवृत न हो।

त्वचवेष्टितमस्थिपञ्जार यदि कायं समवैपि योषिताम् ।
मदनेन च कृष्यसे बलादघृणः खल्वधृतिश्च मन्मथ. ॥

यदि स्त्रियों के शरीर को त्वचा से आच्छादित कङ्काल सदृश समझते हो और फिर भी काम द्वारा बलात् खींचे जा रहे हों तो निश्चय ही वह काम घृणा से रहित और अधीर है।

शुभतामशुभेषु कल्पयन्नखदन्तत्वचकेश रोमसु ।
अविचक्षण ? किं न पश्यसि प्रकृतिं च प्रभवं च योषिताम् ॥
सौ० ८/५४

तुम नख, दांत, केश व लोम इन वस्तुओं में पवित्रता की कल्पना कर रहे हो, हे अज्ञानो ? क्या स्त्रियों की उत्पत्ति के कारण और जन्म स्थान को नहीं देखते हो ?

विशेष—इस पद्य में तथा पूर्व के पद्य में अकारान्त 'त्वच' शब्द का प्रयोग चिन्त्य है।

तदवेत्य मनः शरीरयोर्वनिता दोषवती विशेषतः ।
चपलं भवनोत्सुकं मनः प्रतिसंख्यानबलेन वार्यताम् ॥
सौ० ८/५५

इसलिये स्त्रियों को विशेषतया मन और शरीर के दोषों से युक्त जान कर घर जाने के लिये उत्सुक अपने चपल मन को ज्ञान-बल से रोको।

प्रदहन्दहनोऽपि गृह्यते विशरीरः पवनोऽपि गृह्यते ।
कुपितो भुजगोऽपि गृह्यते प्रमदानां तु मनो न गृह्यते ॥
सौ० ८/३६

न वपुर्विमृशन्ति न श्रिय न मतिं नापि कुल न विक्रमम् ।
प्रहरन्त्यविशेषत. स्त्रियः सरितो ग्राहकुलाकुला इव ॥
सौ० ८/३७

इस प्रकार सब देखने के बाद जब बुद्ध अन्त:पुर से बाहर निकले तब उन्होंने छन्दक सारथि को कन्थक नामक अपना घोड़ा लाने की आज्ञा दी। उस घोड़े का वर्णन स्वभावोक्ति से परिपूर्ण है।

प्रततत्रिकपुच्छमूलपार्ष्णि निभृतह्रस्वतनूजपुच्छकर्णम् ।
विनतोन्नतपृष्ठकुक्षिपार्श्वं विपुलप्रोथललाटकट्युरस्कम् ॥

इसमे पूँछ के बालों का कम लम्बा होना, कान का छोटा होना, पूँछ का सुमों तक लटकना, पार्श्वभाग का चिपटा हुआ होना, ओष्ठ, वक्षःथल, और ललाट का विस्तृत होना घोड़े का गुणवर्णित है। यह संक्षिप्त वर्णन नैषध के अश्व-वर्णन से अधिक रुचिकर और शालिहोत्राशास्त्रानुकूल है। घोड़े के पास आने पर बुद्ध ने अन्तिमबार उसे गले से लगाया और चढ़ने से पूर्व जो बात उससे कही वह बहुत ही बढ़िया है—

बहुशः किल शत्रवो निरस्ताः समरे त्वामधिरुह्य पार्थिवेन ।
अहमप्यमृतं पदं यथावत्तुरगश्रेष्ठ लभेय तत्कुरुष्व ॥

के बुद्धि वस्त्रों में शब्दों के चिरचिटे के कांटे चिपट जाते हैं। भवभूति तथा अश्वघोष में कुछ प्रसाद गुण युक्ततया साम्य जरूर है।

यशोधरा (पत्नी का) विलाप

निशिप्रसुप्तामवशा विहाय मां गतः क्व स च्छन्दक ? मन्मनोरथः।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे समं गतेषु त्रिषु कम्पते मनः॥
बु० स० ८/३२

वे बुद्ध मुझे रात को सोता हुआ छोड़ गये, हे कन्थक! तुझे सूना व अकेला देख कर मेरा मन काँप रहा है।

सुजातजालावतताङ्गुली मृदू निगूढ गुल्फौ विसपुष्पकोमलौ।
वनान्तंभूमि कठिनां कथ नु तौ सचक्रमध्यौ चरणौ गमिष्यतः॥
बु० स० ८/५५

विमानपृष्ठे शयनासनोचित महार्हवस्त्रागुरुचन्दनार्चितम्।
कथं नु शीतोष्णाजलागमेषु तच्छरीरमोजस्वि वने भविष्यति॥
बु० स० ८/५६

कुलेन सत्त्वेन बलेन वर्चसा श्रुतेन लक्ष्म्या वयसा च गर्वितः।
प्रदातुमेवाभ्युचितो न याचितु कथ सभिक्षा परत श्चरिष्यति॥
बु० स० ८/५७

राजा और रङ्क में कोई अन्तर नहीं

द्वन्द्वानि सर्वस्ययतः प्रसक्तान्यलब्धलाभ प्रभृतीनि लोके।
अतोऽपि नैकान्तसुखोऽस्ति कश्चिन्नैकान्त दुःखः पुरुषः पृथिव्याम्॥
बु० स० ११/४३

राज्ञोऽपि वासो युगमेकमेव क्षुत्संनिरोधाय तथान्नमात्रा।
शय्या तथैकासनमेकमेव शेषा विशेषा नृपतेर्मदाय॥
बु० स० ११/४८

आकृष्ट हो जाते हैं—दूसरा अर्थ यह कि यह सुन्दर मुख सामुद्रिक लक्षणों से परिपूर्ण है अतः "यत्राकृति स्तत्रगुणा. वसन्ति" इस सिद्धान्त के अनुसार ज्ञातव्य पदार्थों को अनायास ही जान लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

नन्द को वैराग्य का उपदेश

अथप्रमादाच्च तमुज्जिहीर्षन्मत्वागमस्यैव च पात्रभूतम् ।
प्रव्राजयानन्द ! शमाय नन्दमित्यब्रवीन्मैत्रमना महर्षिः ॥
सौ० सर्ग ५/३४

× × ×

तत्सौम्य लोलं परिगम्य लोक मायोपमं चित्रमिवेन्द्र जालम् ।
प्रियाभिधानं त्यज मोहजालं छेत्तुं मतिस्ते यदि दुःख जालम् ॥
सौ० सर्ग ५/४५

फुटकर पद्य

चलत्कदम्वे हिमवन्नितम्वे तरौ प्रलम्वे चमरी ललम्वे ।
छेतुं विलग्न न शशाक वाल कुलोद्गता प्रीतिमिवार्यवृत्तः ॥
× × × सौ० सर्ग १०/११

दरीचरीणामतिसुन्दरीणां मवोहरश्रोणिकुचोदरीणाम् ।
वृन्दानि रेजुर्दिशि किन्नरीणां पुष्पोत्कचानामिववल्लरीणाम् ॥
सौ० सर्ग १०/१३

बल का अभिमान व्यर्थ है

क्व तद्वलं कंसविकर्षिणो हरेस्तुरङ्गराजस्य पुटावभेदिनः ।
यमेकवाणेन निजघ्निवान् जराः क्रमागतारुपमिवोत्तमंजरा ॥
सौ० सर्ग ९/१८

अतो विदित्वा वलवीर्यमानिनां वलान्वितानामवमर्दितं वलम् ।
जगज्जरामृत्यु वशं विचारयन्वलेऽभिमानं न विधातुमर्हसि ॥
सौ० सर्ग ९/२१

अहं ह्यनार्येण शरीरजेन दुःखात्मके वर्त्मनि कृष्यमाणः ।
निवर्तितस्त्वद्वचनाङ्कुशेन दर्पान्वितो नाग इवाङ्कुशेन ॥
सौ० सर्ग १७/६४

निर्वाप्य कामाग्निमहं हि दीप्तं धृत्यम्बुना पावकमम्बुनेव ।
ह्लादं परं सांप्रत मागतोऽस्मि शीतं ह्रदं घर्म इवावतीर्णः ॥
सौ० सर्ग १६/६६

तद्देशकालौ विविवत्परीक्ष्य योगस्य मात्रामपि चाभ्युपायम् ।
बलाबले चात्मनि संप्रधार्य कार्यः प्रयत्नो न तु तद्विरुद्धः ॥
सौ० सर्ग १६/५२

न दोषतः पश्यति योहि दोषं कस्तं ततो वारयितुं समर्थः ।
गुणं गुणे पश्यति यश्च यत्र स वीयमाणोऽपि ततः प्रयाति ॥
× × × सौ० सर्ग १६/७५

भेतव्यं न तथा शत्रोर्नाग्निर्नाहेर्न चाशनेः ।
इन्द्रियेभ्यो यथा स्वेभ्यस्तैरजस्त्रं हि हन्यते ॥
सौ० सर्ग १३/३१

द्विषद्भिः शत्रुभिः कश्चित्कदाचित्पीडयते न वा ।
इन्द्रियैर्बाध्यते सर्वः सर्वत्र च सदैव च ॥
सौ० सर्ग १३/३२

आलोक्य चक्षुषा रूपं धातुमात्रे व्यवस्थितः ।
स्त्री वेति पुरुषो वेति न कल्पयितुमर्हसि ॥
सौ० सर्ग १३/४२

सचेत्स्त्रीपुरुषग्राहः क्वचिद्विद्येत कश्चन ।
शुभतः केशदन्तादीन्नानुप्रस्थातुमर्हसि ॥
× × × सौ० सर्ग १३/४३

तथा प्रीतेरुपनिषत्प्रामोद्यं परमं मतम् ।
प्रामोद्यस्याप्यहृल्लेखः कुकृतेष्व कृतेषु वा ॥
सौ० सर्ग १३/२५

अहृल्लेखस्य मनसः शीलं तूपनिषच्छुचि ।
अतः शीलं नयत्यग्र्यमिति शीलं विशोधय ॥
सौ० सर्ग १३/२६

ज्ञानस्योपनिषच्चैव समाधिरूपधार्यताम् ।
समाधेरप्युपनिषत्सुखं शारीरमात्तम् ॥
सौ० सर्ग १३/२३

प्रश्रब्धिः कायमनसोः सुखस्योनिषत्परा ।
प्रश्रब्धेरप्युपनिषत् प्रीतिरप्यवगम्यताम् ॥

सौ० सर्ग १३/२४

व्यपत्रपन्तेहि कुलप्रसूता मनः प्रचारैरशुभैः प्रवृत्तैः ।
कण्ठे मनस्वीव युवा वपुष्मान–चाक्षुषैरप्रयतैर्विषक्तैः ॥

× × × सौ० सर्ग १६/७६

दुःखं न स्यात्सुखं मे स्यादिति प्रयतते जनः ।
अत्यन्त दुःखोपरमं सुखं तच्च न बुध्यते ॥
सौ० सर्ग १२/२३

मोक्षस्योपनिषत्सौम्य वैराग्यमिति गृह्यताम् ।
वैराग्यस्यापि सवेदः संविदो ज्ञानदर्शनम् ॥
सौ० सर्ग १३/२२

अतृप्तौ च कुतः शान्तिरशान्तौ च कुतः सुखम् ।
असुखे च कुतः प्रीतिरप्रीतौ च कुतो रतिः ॥
सौ० सर्ग ११/३३

रिरसा यदि ते तस्मादध्यात्मे धीयतां मनः ।
प्रशान्ता चानवद्या च नास्त्यध्यात्मसमा रतिः ॥
सौ० सर्ग ११/३४

विश्वासश्चार्थचर्या च सामान्यं सुखदुःखयोः ।
मर्षणं प्रणयश्चैव मित्रवृत्तिरियं सताम् ।
सौ०

यथाऽऽसनार्थं स्कन्धेन कश्चिद्गुर्वी शिलां वहेत् ।
तद्वत्त्वमपि कामार्थं नियमं वोढुमुद्यतः ॥
सौ० सर्ग ११/२४

श्रवणे ग्रहणेऽथ धारणे परमार्थावगमे मनः शमे।
अविषक्तमतेश्चलात्मनो न हि धर्मेऽभिरतिर्विधीयते ॥
× × × सौ० सर्ग ८/२४

इहार्थमेवारभते नरोऽधमोविमध्यमस्तूभय लौकिकी क्रियाम्ः।
क्रियाममुत्रैव फलाय मध्यमो विशिष्टधर्मा पुनरप्रवृत्तये ॥
सौ० सर्ग १८/५५

प्राणायाम का प्रकार

दन्तेऽपि दन्तं प्रणिधाय कामं ताल्वग्रमुत्पीड्य जिह्वापि ।
चित्तेन चित्तं परिगृह्य चापि कार्यः प्रयत्नो ननु तेऽनुवर्त्या ॥
सौ० १६/८३

कवि ने प्राणायाम करने का सुन्दर प्रकार इसमें वर्णित किया है। यह पातञ्जलानुसारी है, इससे सिद्ध है कि हीनयान मार्ग और भारतीय दर्शनों में वहुत हद तक सादृश्य है।

आर्य सत्यों का वर्णनः—

दुःख समुदयश्चाथो निरोधश्च यथाक्रमम् ।
व्युपशमश्च चत्वारि त्वार्यसत्य विभाव्यताम् ॥ बुद्ध १८/११
× × ×
जन्मदुःखं जरादुःखं मृत्युदुःखं पुनः पुनः ।
इति पश्यन् जगत् सर्वं मुक्तये यत्नवान् भव ॥ बुद्ध १८/८

दुःख, दुःख का कारण निरोध और उसका उपाय यही चार आर्य सत्य हैं। तीन प्रकार के दुःखों को विचारता हुआ प्राणी मुक्ति के लिये यत्नशील वना रहे।

रत्नत्रय का वर्णनः—

वाक्कर्म सम्यक् सहकायकर्म यथावदा जीवनयश्च शुद्धः ।
इदं त्रयं वृत्तविधौ प्रवृतं शीलाश्रयं कर्मपरिग्रहाय ॥

× × × × सौ० सर्ग १६/३१

सत्येषु दुःखादिषु दृष्टिरार्या सम्यग्वितर्कश्च पराक्रमश्च ।
इदं त्रयं ज्ञानविधौ प्रवृतं प्रज्ञाश्रयं क्लेश परिक्षयाय ॥
सौ० सर्ग १६/३२

यह वर्णन जैनियों के रत्नत्रय से साम्य रखता है। अतएव बुद्ध का प्रादुर्भाव महावीर से पूर्व माना जाता है।

कृशन शब्द का सुवर्ण अर्थ में प्रयोगः—

स भासुरं चाङ्गिरसाधिदेवं यथाव दानर्च तदायुषे सः ।
जुहाव हव्यान्यकृशे कृशानौ ददौ द्विजेभ्यः कृशनं च गाश्च ॥ ३६

इस प्रकार का 'कृशन' शब्द का प्रयोग अन्य काव्यों में कठिनता से पाया जाता है।

नव युगल का प्रेम वर्णन

अन्योन्यसंरागविवर्धनेन तद्द्वन्द्वमन्योन्यमरीरमच्च ।
क्लमान्तरेऽन्योन्यविनोदनेन सलीलमन्योन्यममीदच्च ॥
सौ० सर्ग ४/११

यह है पति पत्नी का वास्तविक दाम्पत्य प्रेम।

पान खाने से ओष्ठ लालिमा

तस्या मुखं तत्सतमालपत्रं ताम्राधरौष्ठ चिकुरायताक्षम् ।
रक्ताधिकाग्रं पतितद्विरेफं सशैवलं पद्ममिवावभासे ॥

सौ० सर्ग ४/२१

आज कल लिपस्टिक (Lipstick) लगाकर लोग मुख का या होठों का सौन्दर्य कृत्रिमता पूर्वक बढ़ाते हैं। किन्तु कवि की दृटि में कृत्रिमता तो वनावटी फूल के समान है—उसमें सौगन्ध्य-सौलभ्य का दर्शन कहाँ ?

इस प्रकार इस संकलन में कवि की प्रत्येक प्रकार की रुचि का प्रदर्शन केवल दिङ् मात्र ही किया है। पद्यों के अर्थों का प्रकाश विस्तार भय से—आवश्यक होने पर भी थोड़ा दिया है। 'इस प्रकार के सूक्तिरान इसमें भरे पड़े हैं। आशा है काव्य प्रेमी जनता इनसे अवश्य लाभ उठावेगी।

"अश्वघोषो न मुष्णाति किन्तु पुष्णात्यमनीहया ।
मुक्ति पथां दुष्प्रपद्या—मनवद्यां जनेप्सिताम् ॥ १ ॥
छात्राणां त्राण मुद्दिश्या-श्वघोषो विवृतोमया ।
परीक्षाऽक्षीणपाथोधेः सेतुर्हेतुर्मति स्ततौ ॥ २ ॥
'रामप्यारी' यस्य माता 'भीमसेन.' सुधीः पिता ।
'हरि' स्तेनेय माख्याता व्याख्या विख्यातु भूतले ॥ ३ ॥
शरण्यं तं भवारण्ये, भवं सभूतिसंभवम् ।
नामं नामं शिरो-माला, मित्य माशीर्वचो ब्रुवे ॥ ४ ॥

शिखरणी

'कला वत्यु' द्भूत्या जनक 'शिव' भूत्या सुमनसा,
कणेहत्य प्रीत्या सुरगिरि—अधीत्याऽन्तिकसदा ।
प्रयत्या (दुहित्रा) 'मालत्या' श्रुति-मति सुरत्याऽस्य रचने,
दुरूढो निर्व्यूढो नहि वचनरूढः श्रमभरः ॥ ५ ॥

॥ इति शिवम् ॥

अश्वघोष की रचना पद्धति
(पाश्चात्य विचारकों की दृष्टि में)

दण्डी ने अपने समय में प्रचलित गौड़ी और वैदर्भी, प्राच्य और दाक्षिणात्य इन दो रीतियों के मौलिक भेद को दिखाया है। उनके वर्णन तथा अन्य साक्ष्य से हमे ज्ञात होता है कि गौड़ी रीति की ये मुख्य विशेषताये थी, न केवल गद्य में, जिसमें वैदर्भी भी लम्बे समासों को स्वीकार करती थी किन्तु पद्य में भी लम्बे लम्बे समासों के प्रयोग की प्रवृत्ति, अनुप्रास, और श्रुति कटु ध्वनियों का प्रेम, गूढ़ार्थक व्युत्पत्तिपरक शब्दों का प्रयोग और आडम्बर तथा कृत्रिमता में परिणत होने वाली ओज के प्रकाशन की इच्छा।

जैकोवी (Jacobi) का कहना है कि रीतियों के अन्तर का ऐतिहासिक आधार है; ऐसा तर्क किया जाता है कि संस्कृत काव्य का अभ्यास पूर्व में उत्साह पूर्वक किया जाता था और पश्चिम तथा दक्षिण में काव्य कला के प्रचलित होने के पहले ही वहाँ संस्कृत काव्य मे जीर्णता के दुष्प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगे थे। इस मत के अनुसार दक्षिण की सरलतर शैली जनता के निकट सम्पर्क से उत्पन्न महाराष्ट्र के गीतिकाव्य के अभिनवत्व से भी प्रभावित हुई थी। जैकोवी के उक्त निष्कर्ष के विरुद्ध एक गम्भीर आपत्ति यह है कि दण्डी ने जिन बातों को वैदर्भी रीति की विशेषता माना है नाट्य शास्त्र में वे सब सामान्य रूप से काव्य शैली की विशेषतायें मानी गई हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि नाट्य शास्त्र के समय में गौड़ी रीति की पूर्वोक्त विशेषताये विकसित नहीं हुई थी और वे वंग देश के राजाओं के दरबारों में कविता के विकास के साथ शनैः शनैः विकास को प्राप्त हुईं। इस दृष्टि को इस बात से भी समर्थन प्राप्त होता है कि यद्यपि दण्डी वैदर्भी रीति की प्रशंसा करते हैं और स्पष्टतः गौड़ी रीति उनको अभिमत नहीं है, तो भी उत्तर कालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रायः गौड़ी रीति को ही अपनाने का प्रयत्न किया है। वैदर्भी रीति की और भी अधिक प्राचीनता का अधिक निश्चयात्मक प्रमाण अश्वघोष की कविता से मिलता है। उनकी शैली असंदिग्ध रूप से वैदर्भी के ढंग की है। जैसा बाद में बाण ने पश्चिमी कवियों के विषय मे कहा है, अश्वघोष की शैली मे भी अलंकार की अपेक्षा अर्थ पर अधिक ध्यान दिया गया है। स्वार्थ परक इच्छाओं का त्याग, सार्वभौम क्रियाशील परोपकार की

भावना तथा कल्याण-तत्परता के विचित्र परन्तु अनाकर्षता से रहित दर्शन का वर्णन, व्याख्यान और उपदेश करना ही अश्वघोष का ध्येय था। वे अपनी शैली की स्पष्टता, सजीवता और सुन्दरता से उन लोगों के मन को आकृष्ट करना चाहते थे, जिनको शुष्क-सत्य और नीरस कथन प्रभावित नहीं कर सकते थे। इस उद्देश्य के कारण केवल सौन्दर्य अथवा प्रभावोत्पादकता के निमित्त जान बूझ कर यत्न के लिए कोई अवकाश नहीं था। इसी कारण अश्वघोष की रचनाओं में रोचकता अधिक मात्रा में पाई जाती है, यद्यपि उनके दोनों महाकाव्यों के परम्परा प्राप्त पाठ बुरी दशा मे ही प्राप्त हैं। जिस अर्थ में "सरल" शब्द का प्रयोग अंग्रेजी कविता के लिए किया जा सकता है, वास्तव में उस अर्थ में तो किसी भी संस्कृत काव्य के लिए उसका प्रयोग समुचित न होगा; परन्तु उत्तरकालीन काव्य के मान की अपेक्षा कुछ अंशों में कालिदास की तुलना मे भी अश्वघोष की शैली सरल है।

हम उनकी शैली को विषय परायणता और कामोत्तेजकता से रहित–भी नहीं कह सकते। अश्वघोष द्वारा खींचे शृंगार सुख के चित्र में वर्णन की वे अनेक बारीकियां पाई जाती हैं जिन्हें समस्त भारतीय कवि पसन्द करते हैं परन्तु यही बात उन आलोचकों को बड़ी अरुचिकर प्रतीत होती है जो (Iliad) महाकाव्य मे चंचल जीयस (Geus) के मोहक चित्रण को भी आपत्तिजनक समझते है और जो (Odyssey) महाकाव्य में आरिस (Ares) और एफ्रोडाइट (Aphrodite) के प्रेमाख्यान के लिये रचयिता को दोषी ठहराते हैं। परन्तु अश्वघोष का अपने आदर्श के लिए ज्वलन्त उत्साह है और वह वास्तविक है। वह आदर्श अर्हत का नहीं है जो इस दुःखमय संसार मे पुनर्जन्म से केवल अपने ही छुटकारे की इच्छा से सन्तुष्ट रहता है किन्तु भविष्य में बुद्ध बनने वाले बोधिसत्व का है। जो तब तक निर्वाण में प्रविष्ट नहीं होता जब तक कि वह अन्य समस्त प्राणियों को उस मिथ्या ज्ञान के बन्धन से मुक्त करने के अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर लेता, जिससे नश्वर जीवन और उसके दुःखों के सम्बन्ध में प्राणियों की जन्म-जन्मान्तरों में आसक्ति बनी रहती है। संस्कृत काव्य में-यह एक नई धारा है।

अश्वघोष पर रामायण के प्रभाव

यद्यपि कावेल (Cowell) को लोक प्रचलित रामोपाख्यान के अतिरिक्त अश्वघोष के रामायण से परिचय का कोई निश्चित प्रमाण न मिल सका, तो भी, सूत्रालंकार में रामायण के उल्लेख को छोड़कर भी, स्वयं बुद्धचरित में प्राप्त होने वाले उल्लेखों के सूक्ष्म अध्ययन में इस बात में सन्देह का अवसर नहीं रह जाता। जब नगरवासी यह देखते हैं कि

सिद्धार्थ नहीं लौटे, तब वे उसी प्राचीन समय की तरह रोते हैं, जब कि दशरथ के पुत्र राम का रथ उनके विना ही लौटा था। शुद्धोदन राम से विरहित दशरथ से अपनी तुलना करते हैं, और उनकी मृत्यु उनकी ईर्ष्या का विषय होती है। इनमें और अनेक अन्य स्थलों में संप्रति उपलब्ध रामायण के पाठ के सम्बन्ध मे अश्वघोष के स्पष्ट ज्ञान का पता लगता है। ऐसी मानवता पर अश्वघोष का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। राम के विना सुमन्त के अयोध्या में और सिद्धार्थ के विना छन्दक के कपिलवस्तु मे लौटने के प्रसंगों की स्पष्ट समानता असन्दिग्ध है, सारथि अपने स्वामी को छोड़कर शोक से परिवर्तित दशा वाली नगरी मे लौटता है, उत्कण्ठित पुरवासी उससे मिलने के लिए दौड़ पड़ते हैं और उससे समाचार को सुनकर विलाप करने लगते हैं। स्त्रियां गवाक्षों पर जमा हो जाती हैं और अत्यन्त निराशा से अपने घरों के भीतर लौट आती हैं, सारथि राजा के समक्ष उपस्थित होता है। इसी प्रकार अरण्य में अपने पति को कष्टों से होने वाले सीता के शोक के अनुकरण पर राजकुमार सिद्धार्थ के नये कष्टमय जीवन के दुःखों के लिए यशोधरा के विलाप का निरूपण किया गया है। इस वात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अन्त.पुर मे सोती हुई स्त्रियों के दृश्य के वर्णन का आधार रावण के अन्तःपुर का चित्रण है जैसा कि हमने आगे सविस्तार दिखलाया है।

वाल्मीकि अपने नायक राम की ही भॉति राग से रहित हैं, जो जीवन की अच्छी बुरी घटनाओं का अनुभव करते हुये भी उनसे पृथक् रहते हैं, और जिनकी अन्तिम सफलता के विषय में हम कभी सन्देह नहीं करते। नन्द का सुन्दरी को त्यागना हमें भले ही काफी निर्दयता-पूर्ण लगे और उसके अपने चंचल प्रेम को अप्सराओं में केन्द्रित करने का हास्यस्पद पक्ष भी है, परन्तु अन्त में वह दूसरे के कल्याण के लिए बुद्ध की भॉति ही प्रयत्नशील दिखाई देता है। इसके विपरीत राम का चिरकालीन विरह दुख सहकर मिली हुई सीता के परित्याग में, इस सिद्धान्त के पालन से वढ़कर और कोई उदात्ततर आदर्श नहीं है, कि एक महान् पुरुष की पत्नी का चरित्र सन्देह से ऊपर होना चाहिए।

जैसे शुद्धोदन हमें दशरथ का स्मरण कराते हैं, वैसे सुन्दरी में सीता की समानता दिखाई पड़ती है, परन्तु सुन्दरी में वासना की एक उग्रता है जो सीता में नहीं है। साथ ही उसमे सीता जैसा गौरव और दृढ़ता पूर्ण साहस भी नहीं है। केवल वर्ण्य विषय और चरित्र चित्रण मे ही अश्वघोष वाल्मीकि के आभारी नहीं है, रामायण की उपमायें और रूपक भी अश्व-

घोष काव्य में अधिक परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ते हैं, अपने पुत्र के अन्तिम निश्चय को सुनकर राजा शोकाभिभूत होकर वैसे ही गिर पड़ते हैं, जैसे उत्सव के समाप्त होने पर इन्द्रध्वज झुका दिया जाता है। अश्वघोष के चमत्कार पूर्ण एवं परिष्कृत कतिपय पद्य हैं, जिनमें से कुछ ए० बी० कीथ को पसन्द आये हैं—

१—विबभौ करलग्न वेणुरन्या, स्तन विस्रस्त सितांशुकाशयाना।
ऋजुषट्पद पङ्क्ति जुष्ट पद्मा, जल फेन प्रहसत्तटा नदीव ॥ १ ॥
तथापि पापीयसि निर्जिते गते, दिशः प्रसेदुः प्रबभौ निशाकरः।
दिवो निपेतुर्भुवि पुष्प वृष्टयो, रराज योषेव विकल्मषा निशा ॥ २ ॥
पुनः कुमारो विनिवृत्त इत्यथो गवाक्ष मालाः प्रति पेदिरेऽङ्गनाः।
विविक्त पृष्ठं च निशम्य वाजिनं, पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रुशुः ॥ ३ ॥
शुचौशयित्वा शयने हिरण्मये, प्रबोध्यमानो निशि तूर्य निःस्वनैः।
कथं वत स्वप्स्यति सोऽद्य मे व्रती, पटैक देशान्तरिते महीतले ॥ ४ ॥

निपातों के प्रयोग में अश्वघोष ने बौद्ध संस्कृत में प्रायेण पाई जाने वाली अनियमितता को स्थान दिया है, उदाहरणार्थ—किं वत और प्रागेव का प्रयोग और कितना अधिक के अर्थ में किया गया है, चेद् के लिए सचेद् का प्रयोग है और पौराणिक काव्य की परिपाटी के अनुसार निपातों का कुछ अनर्थक प्रयोग देखा जाता है, यथावस्थित पाठ में हमें आदि की पुनरावृत्ति मिलती है, हि और तु का एक ही वाचक में एकत्र प्रयोग है।

कुछ बौद्ध शब्द भी मिलते हैं, जैसे प्रतिवेध, इञ्जित, प्रश्रब्धि, प्रवेरित। प्रचलित मैत्री के लिये मैत्रा प्रयोग पालि मेत्ता पर आधारित है।

अश्वघोष और मातृचेट

कुछ विद्वान मातृचेट को अश्वघोष से अभिन्न मानते हैं। मातृचेट के अनेक ग्रन्थों में से उनके 'शतपञ्चाशतिक स्तोत्र,' के केवल कुछ खण्ड संस्कृत में पाये जाते हैं। इनमें धार्मिक स्तोत्रों की सामान्यतः सुन्दर शैली मिलती है। मातृचेट ने 'अवदानशतक' लिखा है, जो कि अवदान ग्रन्थों में सबसे प्राचीन प्रतीत होता है। साहित्यिक दृष्टि से 'दिव्यावदान' कहीं अधिक रोचक है। यह आख्यानों का संग्रह है, जिसमें अवदान शतक की भाँति बौद्धों के सर्वास्तिवाद सम्प्रदाय के विनय पिटक से बहुत सामग्री ली गई है। दिव्यावदान का समय अनिश्चित है। शार्दूलकर्णावदान, नामक प्रसिद्ध कथा का चीनी भाषान्तर २६५ ई० में किया गया था। इसमें बतलाया गया है कि अपने उपदेश कौशल से बुद्ध ने किस प्रकार कुमारी

प्रकृति को बौद्ध धर्म का अनुयायी बना लिया। प्रकृति बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द को अत्यधिक प्यार करने लगी थी, और वह उसको उसके व्रत से डिगा देती, यदि आनन्द ने उस महान् आपत्ति के समय में बुद्ध की शक्ति की शरण न ली होती। दिव्यावदान में अशोक के पुत्र कुणाल के करुणा-जनक आख्यान का निस्सन्देह सर्वोत्कृष्ट स्थान है। उसकी झूठी विमाता उसके विरुद्ध उसके पिता के मन को दूषित करके उसको अन्धा करवा देती है, इस पर भी कुणाल अपने मन में घृणा या धिक्कार का भाव नहीं लाता। अशोकावदान कनिष्क से लगभग दो शताब्दी पूर्व लिखा गया था। और उसका लेखक एक भिक्षु था। इन अवदानों की शैली बुद्ध चरित, और सौन्दरनन्द के वर्णनों के आधार पर बनी है। यह भाव सादृश्य स्पष्ट ही प्रतीत होता है। यदि मातृचेट अश्वघोष है, और यही अवदानों का कर्त्ता है, तो अश्वघोष का पाली पर भी पूर्ण अधिकार था, यह सिद्ध हो जाता है, परन्तु कुछ विद्वान मातृचेट यह संज्ञा कालिदास की थी, यह मानते हैं। यह विषय अभी तक अन्धकार गर्त में पड़ा हुआ है। इसका स्पष्ट निर्णय अभी तक नहीं हो सका।

आर्यशूर और अश्वघोष

अश्वघोष का प्रभाव, आर्यशूर रचित जातकमाला, में निश्चितरूपेण परिलक्षित होता है। इसमें बुद्ध के पूर्व जन्मों के कार्यों का उपदेश पूर्व लघु कथाओं के रूप में व्याख्यानों या उपदेशों का सुन्दर और रोचक संग्रह है। काव्य शैली की संस्कृत में इन कथाओं का लिखा जाना ही इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि संस्कृत का प्रयोग राजकीय क्षेत्रों में साहित्य सर्जन, और शास्त्रार्थों के हेतु होने लगा था। और उन राजकीय क्षेत्रों मे आर्यशूर के निकट सम्बन्ध की हम असन्दिग्ध रूप मे कल्पना कर सकते हैं। कथाओं की सामग्री पूर्व से ही प्राप्त थी। लगभग सारी कथायें पालि के जातक ग्रन्थ में मिलती हैं, और उनमें से बारह कथायें पालि चारियपिटक में भी मिलती है।

इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त पुस्तक की भाँति ही, जातक माला की कथायें भी बौद्ध मत के अनुसार भविष्य में उपलब्ध होने वाले बुद्ध की विभिन्न पारमिताओं का निदर्शन प्रस्तुत करने के उद्देश्य से कही गई हैं। आधुनिक रुचि की दृष्टि से इनका मुख्य दोष अरस्तू की मध्यमार्गीय प्रवृत्ति को अस्वीकार करने वाली अत्युक्ति है। सबसे पहली ही कथा में, जो पालि के जातक ग्रन्थ में नहीं है, एक भूखी शेरनी की क्षुधा शान्त करने के लिए

अपने जीवन के उत्सर्ग का आग्रह करने वाले बोधिसत्व की असाधारण उदारता का वर्णन है। बोधिसत्व ने शेरनी को अपने उस बच्चे को खाने के लिए तैयार पाया, जिसका वह बिल्कुल भी पेट नहीं भर सकती थी। दूसरी कथायें भी बलि दी गई वस्तु के मूल्य और जिसके लिए बलि दी जाती है; उस वस्तु के मूल्य के वैषम्य की दृष्टि से कम क्रूरता पूर्ण नहीं है। परन्तु यह दोष तो तत्कालीन एवं उत्तरकालीन रुचि द्वारा गुण माने जाते थे। इत्सिंग ने लिखा है कि जातकमाला उसके समय के बौद्धों मे एक लोकप्रिय पुस्तक थी। अजन्ता के रंगीन भित्ति-चित्रों में ऐसे चित्र और पद्य हैं, जो उस समय जातक माला का अस्तित्व सिद्ध करते हैं। दुर्भाग्यवश इस साक्ष्य का काल निश्चित नहीं है। परन्तु लेख शैली से इन भित्ति-चित्रों का समय छठी शताब्दी ई० प्रतीत होता है। यह इस बात से भी मेल खाता है कि आर्यशूर ने एक अन्य ग्रन्थ का अनुवाद ४३४ ई० में चीनी भाषा में किया था। इसलिए आर्यशूर ने तीसरी या सम्भवतः चौथी शताब्दी में अपने ग्रन्थों की रचना की होगी।

आर्यशूर की कविता प्रसाद गुण युक्त होती है जैसे न्याय प्रिय राजा के शासन के वर्णन में उन्होंने लिखा है कि—

सम प्रभावा स्वजने जने च
धर्मानुगा तस्य हि दण्ड नीतिः।
अधर्ममावृत्य जनस्य मार्गं,
सोपान मालेव दिवो वभूव ॥

अर्थ—'स्वजनों और अन्य जनों में समान प्रभाव वाली जनता को अधर्म की ओर ले जाने वाले मार्ग को रोक कर धर्म का अनुगमन करने वाली, उसकी दण्ड नीति मानो स्वर्ग की सीढ़ी थी।' यह सच है कि उनकी भाषा में यत्र तत्र पालि का प्रभाव दिखाई पड़ता है, परन्तु इससे आर्यशूर की भाषा की शुद्धता में विशेष अन्तर नहीं पड़ता, छन्दोनैपुण्य भी उत्कृष्ट प्रकार का है।

आर्यशूर की प्रशंसा 'सदुक्ति कर्णामृत' में की गई है। जिसका सम्पादन इस पुस्तक के लेखक को मोतीलाल बनारसी दास के यहाँ से आज से २२ वर्ष पूर्व किया था। विशेष जिज्ञासुओं को उस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिये।

सूक्तियाँ

अश्वघोष के दोनों काव्यों से कुछ सूक्तियाँ भी संग्रहीत की गई हैं, पर यह देखने से स्पष्ट होता है कि अश्वघोष का इधर बिलकुल ध्यान न

था जो सूक्ति मौके मुहाल पर आकर बरबस बैठ गई उसे धक्का नहीं दिया। बैठ जाने दिया, इतनी भर अश्वघोष की सूक्तियों या अर्थान्तरन्यासों पर कृपा समझनी चाहिये। हमने सूक्तियों के पूरे २ पते नहीं दिये हैं जो देने चाहिये थे। क्या किया जाय यह बात तब ध्यान से उतर गई, एतदर्थ पाठक क्षमा करें। अगले संस्करण में इस त्रुटि का परिमार्जन कर दिया जायगा।

अश्वघोष ने वैराग्य समुद्भव के लिए बड़ा प्रयत्न किया है। कामिनी काय विच्छायता जरादु:खधर्पितता, शरीर की क्षणभंगुरता, काम की नीरसता, वामाओं की वामता, सारशून्यता आदि सब ही निर्वेद के साधनों को तरह तरह से समझाया है। फिर भी किसी के मन पर असर न हो तो इसे मानव का दुर्भाग्य न माने तो क्या मानें। यशोधरा विलाप, जरादोष वर्णन, संसर्ग परिहार भी उक्त लक्ष्य के ही पोषक हैं।

यह "विषय-दोष-दर्शन" केवल अश्वघोष की ही बपौती नहीं इस प्रकार का विचार कौटिल्य अर्थशास्त्रकार महर्षि चाणक्य एवं वात्स्यायन मुनि ने या पक्षिलस्वामी ने

"तन्निमित्तं त्ववयव्यभिमान: (न्याय दर्शन ४/२/३)

के सूत्र की व्याख्या करते हुए वात्स्यायन भाष्य में इस प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। वे लिखते हैं कि—"तेषां दोषाणां निमित्तं खलु अवयव्यभिमानः।" निमित्त संज्ञा—अनुव्यञ्जन संज्ञा च। तत्र निमित्त-संज्ञा सपरिष्कारा बन्धन निमित्तम्। स्त्री संज्ञा पुरुषस्य, पुरुष संज्ञाच स्त्रिया: सेवं निमित्त संज्ञा। अनुव्यञ्जन संज्ञा तावत् एवं ओष्ठौ, एवं दन्तौ, एवं नासा सेयं काम रागं विवर्धयति। सूतेच दोषान्"। इसी प्रकार के विचार अश्वघोष ने भी प्रकट किये हैं, अत: सिद्ध है कि अश्वघोष बौद्ध होते हुए भी स्थिरात्मवादी व बाह्यार्थवादी था। यही हीनयान की महायान से विशेषता है। उसका ही यत्र तत्र अश्वघोष ने प्रकाश किया है।